महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya, Wardha

(A Central University Established By Parliament By Act. No. 3 Of 1997)

ज्ञान शांति मैत्री

बी.एड. पाठ्यक्रम (80 क्रेडिट)

चतुर्थ सेमेस्टर

046 – मानवाधिकार एवं शांति शिक्षा

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा- 442001 (महाराष्ट्र)

चतुर्थ सेमेस्टर : शिक्षा 046 – मानवाधिकार एवं शांति शिक्षा

(वैकल्पिक विषय)

प्रधान संपादक

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

संपादक

प्रो. अरबिंद कुमार झा
निदेशक (दूर शिक्षा निदेशालय)
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

पाठ्यचर्या निर्माण समिति

प्रो. अरबिंद कुमार झा
अधिष्ठाता, शिक्षा विद्यापीठ
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. गोपाल कृष्ण ठाकुर
सह प्रोफ़ेसर (शिक्षा विद्यापीठ)
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

श्री ऋषभ कुमार मिश्र
सहा प्रोफेसर (शिक्षा विद्यापीठ)
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

संपादक मंडल

प्रो. अरबिंद कुमार झा
निदेशक (दूर शिक्षा निदेशालय)
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

विद्याशंकर शुक्ल
पूर्व निदेशक,
केंद्रीय हिंदी संस्थान, सिलॉग

डॉ. गोपाल कृष्ण ठाकुर
सह प्रोफ़ेसर (शिक्षा विद्यापीठ)
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शिरीष पाल सिंह
सह प्रोफ़ेसर (शिक्षा विद्यापीठ)
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

श्री ऋषभ कुमार मिश्र
सहा प्रोफ़ेसर (शिक्षा विद्यापीठ)
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

सुश्री सारिका राय शर्मा
सहा प्रोफ़ेसर (शिक्षा विद्यापीठ)
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. गुणवंत सोनोने
सहा प्रोफ़ेसर (दूर शिक्षा निदेशालय)
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. समीर कुमार पाण्डेय
सहा प्रोफ़ेसर (दूर शिक्षा निदेशालय)
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. आदित्य चतुर्वेदी
सहा प्रोफ़ेसर (दूर शिक्षा निदेशालय)
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

श्री ब्रम्हा नन्द मिश्र
सहा प्रोफ़ेसर (दूर शिक्षा निदेशालय)
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

इकाई लेखन

समन्वयक- सुश्री सारिका राय शर्मा

इकाई -1
श्री ऋषभ कुमार मिश्र

इकाई -2
श्री समरजीत यादव

इकाई -3
डॉ. रामानंद यादव

इकाई -4
डॉ. रामानंद यादव

अनुक्रम

क्र.सं.	इकाईयों का नाम	पृष्ठ संख्या
1.	इकाई 1. – मानवाधिकार	3-23
2.	इकाई 2. – मानवाधिकार का नीतिगत परिप्रेक्ष्य	24-36
3.	इकाई 3. – शांती शिक्षा के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य	37-60
4.	इकाई 4. – शांति शिक्षा के दार्शनिक परिप्रेक्ष्य	61-90

इकाई -01 मानवाधिकार

इकाई की रुपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 मानवाधिकार का अर्थ

1.2 मानवाधिकार की व्यापकता

1.3 मानवाधिकार की प्रकृति –

1.3.1. मानव अधिकार की प्रकृति एवं परिप्रेक्ष्य

1.3.1.2 अनैच्छिक कर्म

1.3.1.2 ऐच्छिक कर्म

1.3.1.2 सामाजिक व्यवहार (जीवन)

1.3.1.2 अनिवार्यता (Inevitability)

1.3.1.2 कर्तव्य का पालन करने की चेतना से प्ररित कर्म

1.4 मानवाधिकार का क्षेत्र – मानवाधिकारों के वर्ग

1.4.1. प्राकृतिक अधिकार

1.4.2. नैतिक अधिकार

1.4.3. मौलिक अधिकार

1.4.4 कानूनी अधिकार

1.4.5. नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार

1**.4.6 आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार**

1.5 मानवाधिकार : सामाजिक, संस्कृतिक एवं ऐतिहासिक सन्दर्भ

1.6 मानवाधिकार की आवश्यकता -

1.7 मानवाधिकार का समकालीन परिदृश्य -

1.7.1 स्त्री अधिकार

1.7.2 संयुक्त राष्ट्र संघ अभिसमय, 1979

1.7.3 संविधान, कानून और महिलाएं

1.8 प्रमुख नियम, अधिनियम-

1.8.1 संविधान, कानून और महिलाएं

1.8.2 भारतीय दण्ड संहिता, 1860

1.8.3 हिन्दु उत्तराधिकार अधिनियम, 1956

1.8.4 हिन्दु विवाह अधिनियम, 1956

1.8.5 मुस्लिम विवाह –विच्छेद अधिनियम, 1939

1.8.6 महिलाओं एवं लड़कियों के अधिनियम, 1956
1.8.7 चलचित्र अधिनियम, 1952
1.8.8 स्त्री अशिष्ट (प्रतिबंध) अधिनियम, 1986
1.8.9 अपराधिक कानून(संशोधन) अधिनियम, 1986
1.8.10 मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961
1.8.11 विशेषविवाह अधिनियम, 1954
1.9 मानवाधिकार को सुनिश्चित करने में चुनौतियाँ
1.10 दलित अधिकार
1.11 भारत के अल्प संख्यकों की श्रेणियां–
1.12 वंचित वर्ग
1.13 अभ्यास प्रश्न
1.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.0 प्रस्तावना

मानवाधिकार एक प्राकृतिक चीज है इसलिए इसे समझना काफी सरल है। मानवाधिकार जितने सरल है उतना ही कठिन है इसको एक परिभाषा के दायरे में बाँधना। अधिकार शब्द को कई रूपों में परिभाषित करने का प्रयास किया गया है लेकिन एक तथ्य पर लगभग सभी विद्धान सहमत हैं कि अधिकार, कुछ करने या रखने की आजादी है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि अधिकार विधि द्वारा मान्यता प्राप्त और विधि द्वारा संरक्षित होते हैं। सामान्य अधिकारों के बाद आती है अधिकारों की। ये विधिक अधिकार, किसी विशेष विधि के दायरे में आने वाले व्यक्ति को उस विधि द्वारा प्राप्त होते हैं। विधिक अधिकार, आत्योंतिक (सम्पूर्ण) नहीं होते हैं और ये विधि द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों से सीमित होते हैं। इसी क्रम मे अलग चरण है मूल अधिकारों का मौलिक अधिकार वे हैं जो किसी नागरिक के बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक होते हैं। इन्हीं अधिकारों को कहा जा सकता है कि मानवाधिकार, अधिकारों की पराकाष्ठा है। सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि मानवाधिकार वे अधिकार होते हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव मात्र होने के नाते ही प्राप्त हो जाते हैं। भले ही उसकी राष्ट्रीयता, जाति, धर्म, लिंग, वर्ग आदि कुछ भी हो। (मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 में मानवाधिकारों को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि **''व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता और गरिमा से संबंधित वे अधिकार मानवाधिकार कहलाते हैं जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत हैं, अंतरराष्ट्रीय संधियों में उल्लिखित हैं अथवा भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं।''**मानवाधिकार सभी लोगों के लिए समान होते हैं। मानव समाज में प्रत्येक स्तर पर कई तरह के विभेद उपस्थित हैं। भाषा, रंग प्रजातीय स्तर और मानसिक स्तर पर

मानव –मानव के बीच में भेद किया जाता है। इन सबके बावजूद कुछ अनिवार्यताएं सभी समाजों में समान रूप से पायी जाती हैं। ये अनिवार्यताएं ही मानवाधिकार हैं। ये अधिकार मानव को इसलिए प्राप्त होते हैं क्योंकि वह मानव होता है।

1.1 मानवाधिकर का अर्थ

अधिकार शब्द का सामान्य भाषा में अर्थ है कि व्यक्ति कुछ मूलभूत तत्वों युक्त है। मानवाधिकारों को कानूनी, सामाजिक व नैतिक तीनों रूपों में परिभाषित करते का प्रयास विद्वानों ने किया है। आर.जे.विंसेट के मुताबिक-''मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव होने के नाते प्राप्त हैं। मानवाधिकारों का आधार मानव स्वभाव में निहित है।''मानवाधिकार को परिभाषित करते हुढ डेविड सेलबाई कहते हैं कि - ''मानवाधिकार विश्व के प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त हैं क्योंकि वे स्वयं में मानवीय है, वे उत्पन्न नहीं किए जा सकते, खरीदे नहीं जा सकते और ये अधिकार संविदावादी प्रक्रियाओं से भी मुक्त होते हैं।'' इसी प्रकार ए.ए. सईद का कहना है कि –''मानव अधिकारों का संबंध व्यक्ति की गरिमा से है एवं आत्म सम्मान का भाव जो व्यक्तिगत पहचान को रेखांकित करता है तथा मानव समाज को आगे बढ़ाता हैं।'' उपरोक्त सभी परिभाषाओं का गहराई से अध्ययन करने पर पता चलता है कि इन परिभाषाओं में मुख्य रूप से तीन बातों पर जोर दिया गया है- मानव स्वभाव, मानव गरिमा एवं समाज का अस्तित्व। इस प्रकार कहा जा सकता है – कि मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो मनुष्य के जीवन, उसके अस्तित्व और व्यक्तित्व के विकास के लिए आनिवार्य हैं।

1.2 मानवाधिकार की व्यापकता

आज चारों ओर मानवाधिकारों पर चर्चा हो रही है, इस विषय पर सेमिनार और सम्मेलन आयोजित किए जा रहे हैं। दरअसल जैसे–जैसे कोई समाज सभ्य और विकसित होता जाता है, अधिकार, कुछ करने या रखने की आजादी है और यह आजादी विधि द्वारा मान्यता प्राप्त व संरक्षित है। इसी प्रकार मानवाधिकार ऐसे अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव मात्र होने के नाते प्राप्त होते हैं, भले ही उसका लिंग, राष्ट्रीयता, वर्ग धर्म आदि कुछ भी हो। आज हमें जो मानवाधिकार प्राप्त हैं, वे हमें एकदम से प्राप्त नहीं हो गए हैं वरन् इनकी प्रगति धीरे-धीरे,कदम-दर-कदम हुयी है। कहा जा सकता है कि मानवाधिकारों का इतिहास काफी पुराना है, बेहद लंबा है। प्रस्तुत अध्याय में हम मानवाधिकार के इतिहास की ही चर्चा करेंगे। यह सत्य है कि मानवाधिकार की अवधारणा बीसवीं सदी में अधिक लोकप्रिय हुयी लेकिन मानवाधिकारों का अस्तित्व तभी से है जब से मानव ने सभ्य होना सीखा। कुछ विद्वानों के मुताबिक मानवाधिकारों की जड़े प्राचीन यूनान एवं रोम तक जाती हैं

जहां स्टाईल विद्वानों ने सबसे पहले मानवाधिकारों की व्याख्या करते हुए इसकी परिभाषा प्रतिपादित की। स्टाईल दार्शनिकों ने मानवाधिकारों को प्राकृतिक कानून के रूप में मान्यता दी थी। सुकरात और प्लेटो जैसे विद्वानों ने भी मानवाधिकारों पर अपने अमूल्य विचार व्यक्त किए थे जिस कारण उस समय मानवाधिकार से राजनैतिक आदर्शवाद भी जुड़ गया। धीरे-धीरे मान लिया गया कि प्रत्येक व्यक्ति के कुछ प्राकृतिक अधिकार होते हैं। चूंकि ये अधिकार प्राकृतिक होते हैं इसलिए माना जाता है कि ये राज्य (State) की स्थापना से पहले से ही अस्तित्व में हैं और इसलिए इन्हें राज्य से ऊपर माना जाता है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद एक ऐसे संगठन की जरूरत महसूस की गयी जो दुनिया के विभिन्न देशों के बीच समन्वय का काम करे ताकि दुनिया को एक और विश्व युद्ध को सामना न करना पड़े। और इसी आवश्यकता के लिए राष्ट्र संघ की स्थापना की गयी। राष्ट्र संघ की स्थापना से ही मानवाधिकार की अवधारणा काफी लोकप्रिय हो गयी और इसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता मिल गयी। यह सत्य है कि राष्ट्र संघ की प्रस्तावना में मानवाधिकारों या प्राकृतिक अधिकारों का कहीं कोई जिक्र नहीं था लेकिन बाद में संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवाधिकार के क्षेत्र में काफी काम किया। युद्ध के दौरान बंदी बनाये गए सैनिकों के मामलों में तो राष्ट्र संघ ने रेखांकित करने योग्य कदम उठाए। उसने एक आचार–संहिता तैयार की ताकि युद्ध बंदियों के साथ कोई बुरा बर्ताव न कर सके। इसके अलावा राष्ट्र संघ की पहल पर अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) की स्थापना हुयी और इसी के साथ श्रमिकों व बच्चों के अधिकारों को संरक्षित करने के प्रयास भी शुरू हो गए। हालांकि राष्ट्र संघ ने अपने छोटे से कार्यकाल में काफी उल्लेखनीय कार्य किए थे लेकिन फिर भी यह संघ अपने उद्देश्यों में पूरी तरह से सफल नहीं हो पाया। इसके बाद द्वितीय विश्व युद्ध (1939-1945) आरंभ हुआ। इस विश्वयुद्ध की सामाप्ति के साथ ही संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) की स्थापना की गयी। इसके कुछ समय बाद ही 10 दिसंबर, 1948 को वैश्विक मानव अधिकार की घोषणा की गयी थी इसलिए इसी दिन को बाद में ‘मानव अधिकार दिवस’ के रूप में मनाया जाने लगा। धीरे-धीरे मानवाधिकारों की अवधारणा विस्तार पाती गयी और इसकी धारणा विकसित होती गयी। फिर राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व सामाजिक स्तरों पर एक मानवीय जीवन दर्शन का विकास होता गया। बाद के समय में विश्व की सरकारों से निम्नलिखित मानवाधिकारों की मांग की गयी :

1. संविधानवाद की मांग
2. प्रतिनिधि सरकार मांग
3. सार्विक मताधिकार
4. जन–शिक्षा
5. जनस्वास्थ्य
6. लोकतांत्रिक अधिकारों की मांग

1.3 मानवअधिकार की प्रकृति –

1.3.1 मानवअधिकार की प्रकृति एवं परिप्रेक्ष्य

(Nature and Perspective of Human Rights)

मानवाधिकार मोटे रूप में नैतिक और वैध ही सकते हैं। नैतिक अधिकार वे होते हैं जो व्यक्तियों की नैतिकता पर आधारित होते हैं। इन अधिकारों को राज्य के नियमों का अनुमोदन प्राप्त नहीं होता है और इसलिए इनका उल्लंघन भी वैधानिक रूप से दण्डनीय नहीं माना जाता हैं। इनका पालन व्यक्ति अपने अन्त: करण अथवा अपनी स्वाभाविक प्रेरणा से करता है।नैतिक अधिकारों के विपरीत वैध अधिकार वे होते हैं जो राज्य के कानूनों के द्वारा मान्य तथा रक्षित होते हैं और लोकतांत्रिक राज्यों में सामान्यतया इन अधिकारों को न्यायिक संरक्षण प्राप्त होता है। वैध अधिकारों में नागरिक और राजनीतिक दोनों प्रकार के अधिकार सम्मिलित होते हैं। व्यक्तियों को इनका अनिवार्य रूप से पालन करना पड़ता है। इनका उल्लंघन करने पर राज्य द्वारा व्यक्ति को दण्डित किया जा सकता है। नीतिशास्त्र केवल सामान्य मानव के ऐच्छिक कार्मों का ही मूल्यांकन करता है, मानसिक दृष्टि से विक्षिप्त व्यक्तियों, बहुत छोटे बालकों तथा पशुओं के कर्मों का नहीं। मानव के कर्मों को मुख्यत: दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है – अनैच्छिक कर्म तथा एच्छिक कर्म।

1.3.1.1 अनैच्छिक कर्म - अनैच्छिक कर्म वे हैं जिन पर मानव का कोई नियंन्त्रण नहीं रहता और जिन्हें करने अथवा न करने के लिए वह स्वतंत्र नहीं होता। उदाहरणार्थ पाचन क्रिया, हृदय की धड़कन, रक्त –संचार आदि क्रियाएँ मानव के जीवन के लिए अनिवार्य हैं, किन्तु ये सब क्रियाएँ उसके नियन्त्रण में नहीं होतींऔर वह इन्हें जान-बूझकर स्वंय नहीं करता। यही कारण है कि इन क्रियाओं को अनैच्छिक कर्म कहा जाता है। इसी अर्थ में मानसिक दृष्टि से विक्षिप्त व्यक्तियों, बहुत छोटे शिशुओं तथा पशुओं के कर्म भी अनैच्छिक माने जाते हैं, क्योंकि वे इन कर्मों को अपनी स्वतंत्र इच्छा के अनुसार सोच-समझ कर नहीं करते। वे ये सब कर्म कुछ ऐसी शक्तियों के वशीभूत होकर करते हैं जिन पर उनका कोई नियंन्त्रण नहीं होता। इनके सम्बन्ध में कर्ता को किसी प्रकार की स्वतंन्त्रता नहीं होती।

1.3.1.2 ऐच्छिक कर्म – ऐच्छिक कर्म वे हैं, जिन्हें करने या न करने के लिए मानव स्वतंत्र होता है। दूसरे शब्दों में, जिन कर्मों पर मानव का नियन्त्रण होता है और जिन्हें वह अपनी स्वतंत्र इच्छानुसार कर या छोड़ सकता है उन्हें ऐच्छिक कर्म कहा जाता है। ये कर्म मानव जान–बूझकर अथवा सोच–समझकर कर करता है, किसी बाह्य अथवा आन्तरिक विवशता के कारण नहीं, अत: इन कर्मों के लिए उसे उत्तरदायी माना जाता है। उसके इन्हीं ऐच्छिक कर्मों को 'आचरण'की संज्ञा दी जाती है उनमें से अधिकतर ऐसे ही होते हैं जिन्हें करते समय मानव को यह ज्ञान होता है कि वह अमुक कर्म कर रहा है। उदाहरण के लिए आप यह जानते हैं कि आप किसी बाह्य विवशता के कारण अपनी स्वतंत्र इच्छानुसार यह पुस्तक पढ़ रहे हैं। इसी प्रकार विपत्ति-काल में जब आप किसी व्यक्ति

की सहायता करते हैं तब आपको इस बात का ज्ञान होता है कि आप उसकी सहायता कर रहे हैं। ऐसी सभी कर्मों को सचेतन कर्म कहा जाता है। परन्तु कुछ कर्म ऐसे भी होते हैं जिन्हें मानव यंत्रवत करता जाता है और जिन्हें करने के लिए उसे सोचते-समझने तथा प्रयत्नपूर्वक ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता नहीं होती। आदत या अभ्यास के फलस्वरूप किये जाने वाले सभी कर्म ऐसे ही कर्म हैं। इन कर्मों को अभ्यास जन्म कर्म कहा जाता है। आदत से विवश होकर किसी कंजूस द्वारा एक–एक पैसे की बचत करना तथा किसी अपराधी द्वारा बार-बार एक ही अपराध को करना अभ्यास जन्य कर्मों के उदाहरण हैं। ऐसे सभी कर्मों को भी ऐच्छिक ही माना जाता है, क्योंकि इनकी आदत पड़ने से पूर्व मानव इन्हें करने या न करने के लिए स्वतंत्र था। संक्षेप में उपर्युक्त दोनों प्रकार के ऐच्छिक कर्मों के औचित्य अथवा अनौचित्य के सम्बन्ध में निष्पक्ष निणर्य देकर उनका तर्क संगत मूल्यांकन करना ही मुख्य उद्देश्य है।

1.3.1.3 सामाजिक व्यवहार (जीवन) (Social Life)- दूसरों के साथ मिलकर रहते हुए सामंजस्य पूर्ण सामाजिक जीवन व्यतीत करना मानव की आवश्यकता है। यदि मानव बिल्कुल अकेला रहता और उसके कर्म अन्य व्यक्तियों के कर्मों को न तो प्रभावित करते और न उनके द्वारा प्रभावित होते तो नैतिकता की आवश्यकता ही न होती। परन्तु सभी सामान्य मानवों को जन्म से मृत्यु तक किसी समुदाय में रह कर सामाजिक जीवन बिताना पड़ता हैं, फलत: उन के अधिकतर कर्म किसी न किसी रूप में एक-दूसरे के जीवन को अवश्य प्रभावित करते हैं। मानवों की इच्छाओं, उद्देश्यों एवं स्वार्थों में भेद तथा विरोध के कारण उनमें परस्पर संघर्ष उत्पत्र होता है जिसके के पारिणाम स्वरूप व्यवस्थित और सामंजस्यपूर्ण सामाजिक जीवन बहुत कठिन हो जाता है। वस्तुत: इसी कठिनाई को दूर करने के लिए नैतिकता का विकास हुआ है जो ऐसे नैतिक नियमों अथवा सिद्धांतों का निर्माण करने का प्रयत्न करता है जिनके द्वारा समाज में यथा सम्भव अधिकाधिक व्यवस्था एवं सामंजस्य की स्थापना की जा सके। इस प्रकार स्पष्ट है कि सामाजिक जीवन व्यतीत करने वाले सभी साधारण मानवों के लिए नीति का विशेष महत्व है।

1.3.1.4 अनिवार्यता (Inevitability) – कान्ट के अनुसार कर्तव्य में एक प्रकार की अनिवार्यता अथवा बाध्यता अवश्य पाई जाती है जिसके कारण मानव इच्छा न होते हुए भी अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए प्रेरित होता है। मुख्यत: इसी तथ्य को ध्यान में रख कर कान्ट ने कर्तव्य की परिभाषा दी है। उनका कथन है कि “ नैतिक नियम के प्रति सम्मान की भावना से प्रेरित होकर इसी नियम के अनुरूप कर्म करने की अनिर्वायता ही कर्तव्य हैं ” इस प्रकार कान्ट के विचार में कर्तव्य की चेतना ही मानव को ऐसा कर्म करने के लिए प्रेरित कर सकती है जो उसकी स्वाभाविक इच्छा अथवा प्रवृत्ति के विरूद्ध होते हुए भी उसका कर्तव्य है। इसी कारण उन्होंने मानव की इस कर्तव्य-चेतना को ही सम्पूर्ण नैतिकता का एकमात्र मूल आधार माना है। उनका निश्चित मत है कि मानव

केवल उसी कर्म का नैतिक मूल्य है जो उसकी इस कर्तव्य–चेतना द्वारा निर्धारित होता है। अपने इस मत को स्पष्ट करने के लिए कान्ट ने मानवीय कर्मों को तीन वर्गों में विभाजित किया हैं-

(1) तात्कालिक संवेग इच्छा, अथवा प्रवृत्ति द्वारा प्रेरित कर्म।

(2) अपने हित अथवा कल्याण के लिए सोच-समझ कर किये जाने वाले कर्म।

(3) केवल अपने कर्तव्य का पालन करने की चेतना से प्रेरित कर्म।

1.3.1.5 कर्तव्य का पालन करने की चेतना से प्ररित कर्म – कान्ट के मतानुसार इनमें से केवल तीसरे प्रकार के कर्म ही वास्तव में शुभ हैं-अर्थात इन्हीं कर्मों का नैतिक मूल्य हैं। जो कर्म मानव किसी तात्कालिक संवेग, प्रवृत्ति अथवा अपने कल्याण की इच्छा से प्रेरित होकर करता है उनका नैतिक दृष्टि से कोई महत्व नहीं है। आत्मकल्याण की कामना से प्ररित कर्मो की भाँति विशिष्ट संवेगों, इच्छाओं या प्रवृत्तियों से प्ररित कर्मो को भी कान्ट नैतिक दृष्टि से शुभ नहीं मानते। प्राय: सभी व्यक्ति यह स्वीकार करते हैं कि क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, प्रतिशोध आदि विध्वंसात्मक संवेगों से प्रेरित कर्म केवल अनैतिक ही नहीं अपितु कर्ता के आनंद एवं कल्याण के लिए भी घातक हैं।

सहानुभूति एवं उदारता- यदि मानव का कोई कर्म कर्तव्य–पालन कर चेतना के साथ-साथ दया, सहानुभूति, उदारता आदि संवेगों से भी प्रेरित होता है तो क्या वह कान्ट के मतानुसार नैतिक दृष्टि से शुभ है। कि यदि यह कर्म केवल कर्त्तवय–पालन कर चेतना द्वारा ही निर्धारित हुआ है तो इसके साथ अन्य संवेगों के होते हुए भी इसका नैतिक मूल्य कम नहीं होता। ऐसी स्थिति में यह कहना अनुचित है जैसा कि कुछ आलोचकों ने कहा है कि जो कर्तव्य–पालन की चेतना के साथ-साथ किसी अन्य संवेग द्वारा भी प्रेरित हुआ है। वस्तुत: यदि कोई कर्म कर्तव्य का पालन करने की चेतना से ही प्रेरित हुआ है तो उसके साथ किसी अन्य संवेग के उपस्थित होने अथवा न होने से उसके नैतिक मूल्य में कोई अन्तर नहीं पड़ता। वे मानव के जीवन में दया, सहानभूति, उदारता आदि संवेगों के महत्व को स्वीकार करते हैं, क्योंकि ये संवेग हमारे कर्तव्य–पालन में सहायक हो सकते हैं। परन्तु केवल इन्हीं संवेगों द्वारा प्रेरित कर्म प्रशंसनीय होते हुए भी उनके मतानुसार नैतिक दृष्टि से शुभ नहीं हैं, क्योंकि इनके मूल में कर्तव्य–पालन करने की चेतना का आभाव है जो वास्तव में नैतिकता का एक मात्र मूल आधार है। यदि कोई व्यक्ति किसी संवेग, अच्छा अथवा प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने कर्तव्य का पालन करता है तो कुछ समय पश्चात इस संवेग, इच्छा अथवा प्रवृत्ति के न रहने पर ही कर्तव्य की उपेक्षा भी कर सकता है। इसी कारण कर्मों के नैतिक मूल्य को संवेग, इच्छा अथवा प्रवृत्ति पर आधारित न मानकर केवल कर्तव्य-चेतना पर ही आधरित माना है।

1.4 मानवाधिकार का क्षेत्र – मानवाधिकारों के वर्ग

मानवाधिकारों के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक, संवैधानिक और विधिक अधिकार आते हैं इसलिए विद्वानों ने इन्हें अपने–अपने तरीके से विभिन्न वर्गों में बांटने का प्रयास किया है।

मानवाधिकारों को वर्गीकृत करने के दो प्रमुख आधार हैं- जीवन के विविध क्षेत्र और इन अधिकारों को बनाए रखने वाले कानून इस आधार पर मानवाधिकारों के प्रमुख वर्ग निम्न्लिखित हैं:

1.4.1.प्राकृतिक अधिकार -प्राकृतिक अधिकार वे अधिकार हैं जो मानव स्वभाव में ही निहित हैं। स्व प्रज्ञा का अधिकार, मानसिक स्तर का अधिकार, जीवन का आधार आदि इसी श्रेणी में आते हैं। ये बेहद महत्वपूर्ण अधिकार होते हैं।

1.4.2 नैतिक अधिकार -नैतिक अधिकार निष्पक्षता और न्याय के सामान्य सिद्धांतों पर आधारित हैं। समाज में मानव इन अधिकारों को प्राप्त करने का आदर्श रखता है। सामाजिक व्यवस्था में ये अधिकार बहुत आवश्यक होते हैं।

1.4.3. मौलिक अधिकार – मौलिक अधिकार वे अधिकार हैं जिनके बिना मनुष्य का विकास नहीं हो सकता है। जैसे जीवन का अधिकार मानव जीवन का मूलभूत अधिकार है। इन अधिकारों की रक्षा करना प्रत्येक समाज का मूल कर्तव्य है। हमारे संविधान में प्रत्येक नागरिक को 6 मौलिक गए हैं अधिकार दिए।

1.4.4 कानूनी अधिकार -कानूनी अधिकार का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी भेदभाव के कानून के समक्ष समान समझा जायेगा तथा साथ ही कानूनों का समान संरक्षण भी दिया जाना चाहिए। ये समय –समय पर प्रवर्तित किए गए हैं।

1.4.5.नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार -नागरिक और राजनीतिक अधिकार वे अधिकार हैं जिन्हें राज्य द्वारा स्वीकार किया जाता है।

1.4.6 .आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार -प्रत्येक राज्य में अपनी परम्परा एवं सभ्यता के अनुसार इन अधिकारों को लागू किया जाता है। जैसे समाजवादी राज्यों में काम का अधिकार, समानता का अधिकार महत्वपूर्ण हैं तो दूसरी तरफ पूँजीवादी राज्यों में स्वतंत्रता का अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार अधिक महत्तपूर्ण हैं। भारतीय संविधान के अध्याय चार के नीति निदेशक तत्व मनुष्य के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की मांग राज्य से करते हैं। यह निर्धारण करना कठिन है कि कौन सा अधिकार अधिक महत्वपूर्ण है और कौन सा कम मानवा अधिकारों के संबंध में वैश्विक घोषणा पर मानव अधिकारों पर विशेष ध्यान दिया गया है।

1.5 मानवाधिकार :सामाजिक, संस्कृतिक एवं ऐतिहासिक सन्दर्भ

आजादी से पहले भारत में मानवाधिकारों की स्थिति काफी खराब थी लेकिन आजदी के पहले से ही मानवाधिकारों की मांग उठने लगी थी। इतिहास के पन्ने पलटने पर पता चलता है कि भारत की संस्कृति पांच हजार साल से भी अधिक पुरानी है। इतिहास के इस लंबे काल खंड के दौरान भारत में मानवाधिकार एक परंपरा के रूप में जीवित रहा है। कुछ लोगों का तो कहना है कि मानव अधिकारों की उत्पत्ति कहीं न कहीं भारतीय संस्कृति व सभ्यता से ही हुयी है। इन लोगों का कहना है कि अंग्रेजी

के 'राइट' के हिंदी पर्याय 'अधिकार' में कहीं अधिक अधिकार समाये हुए हैं अर्थात् 'अधिकार' अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि मानवाधिकारों की अवधारणा पूर्णत: पश्चिमी नहीं है अपितु इसमें कहीं न कहीं कुछ भारतीय भी सम्मिलित है।

भारत प्राचीन काल से ही एक धार्मिक देश रहा है और यहां धर्म को सदैव से ही सर्वाधिक महत्व दिया जाता रहा है। यह मानवाधिकरों का महत्व ही है कि भारतीय धर्म में भी मानवाधिकारों को पर्याप्त महत्व दिया गया है। कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय सभ्यता का धर्म की अवधारणा में ही व्यापक मानवीय सामाजिक व्यवस्था के रूप मे मानव अधिकारों का उल्लेख भी किया गया था। इस प्रकार पश्चिमी आधुनिक विचारधारा एवं प्राचीन भारतीय धर्म के रूप में मानव अधिकारों की संकल्पना की गयी थी। कहा जा सकता हैं कि मानवाधिकार की अवधारणा प्राचीन भारतीय सभ्यता में भी विचारणीय थी। उस समय हमारे यहां सनातन धर्म का प्रभाव था सनातन धर्म का विधान न केवल धार्मिक एवं नैतिक विचार था अपितु राजा के व्यवहारों, दण्ड विधानों को भी संतुलित करता था। प्राचीन भारतीय समाज में विधि के सक्षम समता व समानता का पालन का किया जाता था। यह अवधारणा भी मानवाधिकार से ही ओतप्रोत थी। और तो और प्राचीन भारत में युद्धकाल के दौरान भी प्राकृतिक मानव अधिकारों का पालन किया जाता था। उस समय शाम ढलते ही स्वत: ही युद्ध विराम हो जाता था और फिर कोई किसी दुश्मन सैनिर हमला नहीं करता था। इसी प्रकार युद्ध बंदियों के साथ मानवीय व्यवहार किया जाता था और उन्हें बेवजह तंग नहीं किया जाता था। प्रसिद्ध महाभारत का तो सूत्र वाक्य ही "मानव से बड़ा कुछ भी नहीं है" था। स्पष्ट है कि उस समय मौलिक मानवाधिकारों को काफी महत्व दिया जाता था। श्री भगवत गीता में भी मानव के लिए उसके कर्तव्यों को सर्वोपरि माना गया है। प्रकार जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थकर महावीर ने भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर बल दिया था। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य तो अपने मानवाधिकार संबंधी कार्यों के लिए दूर–दूर तक विख्यात थे। चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधान मंत्री कौटिल्य ने अपने महाग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक विधानका निर्धारण किया था। उनका कहना था कि राजा, प्रज्ञा के हित के लिए ही होता है इसलिए राजा को सदैव प्रजा के अधिकारों को संरक्षण प्रदान करना चाहिए। सम्राट अशोक का राजदर्शन भी मानवीय सिद्धांत पर आधारित था। वे दया, मानवता, करूणा और प्रेम पर बल देते हुए मानवाधिकारों के सच्चो पोषक के रूप में काम करते थे। यहां यह बताना प्रासंगिक होगा कि मानवाधिकारों का प्रश्न तभी उठता है जब किसी के अधिकारो का दमन होता है। जैसे-जैसे अत्याचार बढ़ते हैं वैसे-वैसे मानवाधिकारों की मांग भी जोर पकड़ने लगती है। प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था, वर्ण आधारित थी। पूरी सामाजिक संरचना ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों में विभाजित थी। यहां निचले स्तर के वर्ण अर्थात् वैश्या एवं शुद्र पर लगातार अत्याचार किये जाते थे। इस सामाजिक व्यवस्था में अन्याय एवं शोषण का जोर था और इसलिए वहां मानवाधिकारों के पक्ष में भी आवाज थी। इसके बाद आया मध्यकाल हालांकि भारतीय

इतिहास का मध्याकाल अपनी बर्बरता के लिए जाना जाता है लेकिन उस प्रतिकूल माहौल में मानवाधिकार किसी न किसी रूप में मौजूद थे। मुगल शासक अकबर और जहांगीर की न्यायाप्रियता तो दूर–दूर तक विख्यात थी। ये दोनों मुगल शासक प्रजा के मानवाधिकारों के प्रति काफी सजग रहते थे। सम्राट अकबर ने अपनी धार्मिक नीति 'दीन-ए-इलाही' के द्वारा प्रजा को धार्मिक सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया। इसी प्रकार मध्यकाल का भक्ति –आंदोलन एक व्यापक मानवीय आंदोलन था। जिसमें सारा जोर मानवके प्राकृति अधिकारों पर था। भक्ति आंदोलन का एकमात्र उद्देश्य था सभी प्रकार के भेदभाव को भूल कर प्रेम एवं सहयोग करना। आधुनिक काल में आम जनता के मानवाधिकारों को नई ऊँचाईयां मिलीं। इस दौर में विभिन्न सामाजिक बुराईयो जैसे बाल विवाह, सती प्रथा, बहुपत्नी प्रथा, जाति प्रथा और अस्पृश्यता के खिलाफ जबरदस्त आंदोलन खड़ा किया गया। इस दौर के समाज सुधारकों में स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, राजा राम मोहन राय, ज्योतिबा फुले और नारायण गुरू जैसे लोग प्रमुख थे। इन सभी समाज सुधारकों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आम जनता को मानवाधिकार का पाठ पढ़ाया। भारतीय इतिहास के आधुनिक काल में देश विदेशी ताकत का गुलाम था और हमारे यहां स्वतंत्रता आंदोलन पूरे जोर- शोर से चल रहा था। आजादी की इस लड़ाई के दौरान सन् 1928 में 'नेहरू रिपोर्ट' प्रकाश में आयी जिसमें मानवाधिकारों की बात की गयी थी। इसके बाद कांग्रेस का अधिवेशन करांची में हुआ। अधिवंशन के बाद 'कराची प्रस्ताव' पारित किया गया जिसमें हिन्दुस्तानीयों के मानवाधिकारों की बात जोर-शोर से उठाया गया था।

आजादी के साथ ही शासन की बागडोर भारतीयों के हाथ में आ गयी और अंग्रेजी कानून को हटा कर भारतीय कानून लागू कर दिया गया। भारतीय संविधान 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ और हम एक गणतंत्र बन गए। भारतीय संविधान में भी मानवाधिकारों को पर्याप्त स्थान दिया गया था।

1.6 मानवाधिकार की आवश्यकता -

मानवाधिकारों को सामान्यत: ऐसे अधिकारों के रूप में परिभाषित किया जाता है जिनका उपभोग करने और जिनकी रक्षा की अपेक्षा रखने का हक प्रत्येक मनुष्य को है। अतीत में सभी समाजों और संस्कृतियों ने कुछ ऐसे अधिकारों और सिद्धांतों की अवधारणा का विकास किया है जिनका आदर करना आवश्यक समझा गया है और जिनमें से कुछ को सार्वजनीन माना गया है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता में एक गहरी मानवतावादी परंपरा और सहिष्णुता की परंपरा तथा विविधता तथा अनेक रूपता के प्रति आदर की परंपरा रही है। भारतीय दर्शन परंपरा ने सार्वजानिक बधुत्व और तमाम विश्व को एक परिवार के रूप में देखने (वसुधैव कुटुम्ब कम) की अवधारणाओं को स्पष्ट किया। ये अवधाणाएं अनेक धार्मिक और समाज सुधार आंदोलनों में भी प्रबलतापूर्वक

प्रतिबिंबित हुई। इसी प्रकार के विचार अन्य संस्कृतियों और सभ्यताओं में भी विकसित हुए। मावतावाद यूरोप में पुनर्जागरण (रिनासा) और ज्ञानोदय (इनलाटेनमेंट) का मूलमंत्र कहा जा सकता है। उसने मनुष्य को सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित किया, उसके तात्विक सामर्थ्य और गरिमा पर जोर दिया, उसकी असीम सृजनात्मगक संभावना में गहन आस्था व्यक्त की और व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा व्यिक्त के अपरिहार्य अधिकारों की घोषणा की। मानवाधिकारों को मान्यता दिलाने की खातिर और राजनितिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दमन के खिलाफ तथा अन्याय और असमानता के विरोध में किए गए संघर्ष सभी मानव समाजों के इतिहास का अभिन्न अंग रहे हैं। मानव जाति का सदस्य होने के नाते प्रत्येक मनुष्य जिन अधिकारों का उपयोग करने का हकदार है, इतिहास में उनकी अवधारणा के विकास में ये संघर्ष हमेशा निर्णायक रहे हैं और अब भी हैं, खास तौर पर उन अधिकारों का वास्तविक उपभोग करने में। मानव अधिकारों की अवधारणा के विकास की प्रक्रिया में और अधिकारों के वास्तविक व्यवहार में आने में परस्पर विरोध पाए जाते रहे हैं। सार्वजनीन बंधत्व की अवधारणा से व्यवहार में सामाजिक दमन में कोई विशेष कमी नहीं हुई। यूरोपीय-पूर्व संस्कृतियों के विध्वंस, इंसानों की तिजारत और विश्व के कई भागों के उपानिवेशीकरण की शुरूआत का भी काल था। उन्नीसवीं सदी में उदित समाजवादी आंदोलन के साथ मानवाधिकारों की विकासशील अवधारणा में एक नया तत्व जुड़ गया। इस आंदोलन का जोर ‘वर्ग–आधारित शासन’ की समाप्ति तथा सामाजिक और आर्थिक समानता पर था। इसमें संदेह नहीं कि मानवाधिकारों की समकालीन अवधारणा तथा उसका सार्वजनीन स्वरूप एवं विश्वव्यापी स्वीकृति अतीत की समृद्ध विरासत पर आधारित है, परंतु उसे बीसवीं सदी के विशिष्ट ऐतिहासिक संदर्भ में देखना ही उचित होगा। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के लगभग पूरे दौर में हमें एक ओर तो विश्व के बहुत बड़े हिस्सों में औपनिवेशिक शासन का वर्चस्व, बहुत–से देशों में सर्वसत्तावादी सरकारों का उदय, तथा कुछ देशों में बर्बर और आक्रमक फासीवादी शासन व्यवस्थाओं की स्थापना देखने को मिलती है और है दूसरी ओर उपनिवेशों में राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलनों तथा अनेक देशों में लोकतंत्र एवं सामाजिक प्रगति की हलचलों के दर्शन होते हैं। बीसवीं सदी में ही मानव इतिहास के दो सबसे विनाशकारी युद्ध हुए, और पहले युद्ध के बाद जो बीस वर्षो की ‘शांति का अंतराल पड़ा वह भी द्वितीय विश्व युद्ध की तैयारी का दौर भर था।’

1.7 मानवाधिकार का समकालीन परिदृश्य -

मानवाधिकारों की लम्बे समय से विकसित हो रही अवधारणा के अनुसार वर्तमान विश्व के संदर्भ में महत्वपूर्ण रूप से परिवर्तित हो रही है। इस अवधारणा में एक नया आयाम कुछ अन्तरालों पर महसूस किया जाने लगा और यह माना जाने लगा कि मानवाधिकारों की रक्षा केवल उन राज्यों की चिन्ता का विषय नहीं है, जहाँ पर इनका उल्लंघन होता हैं। अब तो पूरी दुनिया मे मानवाधिकारो के संरक्षण

और प्रोत्साहन को सुनिश्चित करना सम्पूर्ण मानवता की चिन्ता का विषय बन गया हैं। मानवाधिकारों के लिए यह अंतरराष्ट्रीय चिन्ता हाल का विकास और संचार के विकास के साथ दुनिया के सिकुड़ने का परिणाम हैं।

मानवाधिकार सम्बन्धी दस्तावेजों के कई प्रावधानों को लेकर अनेक देशों को आपत्ति हैं। उदाहरण के लिए, सिविल और राजनैतिक अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय करार के अनुच्छे 1 में आत्मनिर्णय का अधिकार दिया गया हैं जिसके अनुसार सभी लोगों को अपने राजनैतिक स्तर का निर्णय करने का अधिकार हैं। सोवियत संघ में शामिल यूक्रेन, बेलारूस, कजाकिस्तान आदि इलाकों की जनता में सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक रूप से मूलभूत अंतर थे इसलिए लम्बे समय तक इन्हें बल प्रयोग से एकीकृत नहीं रखा जा सका और अंतत: सोवियत संघ में से अनेक स्वतंत्र राष्ट्र यूक्रेन, तूर्कमेनिया आदि अलग हुए। पाकिस्तान भी अपने हिस्से के रूप मे पूर्वी पाकिस्तान को सिर्फ राजनैतिक बल के आधार पर शामिल नहीं रख सका, क्योंकि दोनो हिस्सों में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक भिन्नता थी इसलिए अंतत: बंग्लांदेश के रूप में पूर्वी पाकिस्तान अलग हो गया। मार्क्सवाद ने मानवाधिकार की 'प्राकृतिक कानून' वाली धारणा को मानने से इन्कार किया है। पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन पर पूँजीपतियों द्वारा कब्जा कर लिया जाता हैं। व्यक्तिवादी अधिकार और कुछ नहीं हैं, बल्कि बुर्जुओ वर्ग अधिकारों की व्याख्या हैं। आर्थिक साधनों पर कुछ लोगों के अधिकार से बहुसंख्यक सर्व सर्वहारा के हितों की पूर्ति नहीं हो सकती।

1.7.1 स्त्री अधिकार -

दुनिया में सबसे अधिक अपराध और अत्याचार महिलाओं के खिलाफ ही होते हैं। इस परिपेक्ष्य में महिलाओं को मानवाधिकार काफी महत्वपूर्ण हो जाते हैं। विश्व के लगभग सभी देशों में महिलाओं की विशेष अधिकार दिए गए हैं ताकि वे सम्मानपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकें। मानवाधिकारों के नजरिए से महिलाओं को विशेष रूप से व्यवहार करने योग्य माना गया है। महिला आंदोलन के इस दौर में एक ओर जहां महिलाओं को अधिकाधिक अधिकार दिए जाने की कवायद चल रही है।

1.7.2 संयुक्त राष्ट्र संघ अभिसमय, 1979

महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के विभेदों की समाप्ति संबंधी अभिसमय को घोषणा सन् 1979 में की गयी थी और 3 सितंबर, 1981 से यह अभिसमय दुनियाभर में लागू हो गया। इस अधिकार पत्र में पुरूषों और महिलाओं के समान अधिकारों में आस्था को गंभीरतापूर्वक दुहराया गया था और कहा गया था कि सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र और समान अधिकारों के हकदार हैं ओर लिंग–संबंधी विभेद सहित हर प्रकार के विभेद के बिना वे संयुक्त राष्ट्र की घोषणा में उल्लखित अधिकारों के हकदार हैं। इस अभिसमय में कहा गया है कि किसी भी देश के सम्पूर्ण विकास, विश्व के कल्याण और शांति के हित का तकाजा है कि महिलाएं पुरूषों से पूर्ण सभागत के स्तर पर सभी

क्षेत्रों में अधिक से अधिक शिरकत करें। इस अभिसमय पर संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी के सभी सदस्य देशों में हस्ताक्षर किए हैं।

1.7.3 संविधान, कानून और महिलाएं –

भारतीय संविधान स्त्री–पुरूषों में किसी प्रकार का कोई भेद नहीं करता है अर्थात हमारा संविधान न तो पुरूषों का पक्ष लेता है और न ही महिलाओं का विरोध करता है। जिस तरह संविधान की नजर में स्त्री–पुरूष समान हैं, उसी प्रकार महिलाओं के पक्ष में बने कानूनों में भी उन्हें पुरूषों के समान दर्जा दिला कर उनके लिए समुचित न्याय का प्रबंध किया है। महिलाओं के हक में दहेज प्रतिरोध अधिनियम, भरण –पोषण संबंधी कानून, हिंदू उत्तरधिकार अधिनियम, मातृत्व लाभ अधिनियम, हिंदु अवयस्कता एवं संरक्षकता अधिनियम, विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, सती निरोधक कानून, समान पारिश्रमिक अधिनियम परिवार न्यायालय अधिनियम, मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम, बाल विवाह अवरोध अधिनियम और अनैतिक व्यापार दमन अधिनियम जैसे अनेक कानून बने हैं जिनके कारण महिलाओं की स्थिति में उत्तरोत्तर सुधार हुआ है।

1.8 प्रमुख नियम, अधिनियम

भारतीय संविधान तथा विभिन्न दण्ड संहिताओं में भी कई ऐसे नियम, विनियम, अधिनियम आदि बनाए गए हैं जिनकी सहायता से महिलाओं के हितों की रक्षा की जा सकती है। इसके अलावा अंग्रेजों के कारण महिलाओं की स्थिति में काफी सुधार देखने को मिले, जैसे –सती प्रथा उन्मूलन अधिनियम, विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, सिविल मैरिज अधिनियम, बाल-विवाह अवरोधक अधिनियम आदि। महिलाओं से संबंधित कुछ प्रमुख अधिनियम नीचे दिए गए हैं :

1.8.1 भारतीय दण्ड संहिता, 1860

भरतीय दण्ड संहिता में भी महिलाओं पर होने वाले अत्याचार एवं निर्दयता के विरूद्ध सजा देने की व्यापक रूप से व्यवस्था की गई है। दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 में तत्कालीन प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने दहेज को एक सामाजिक समस्या तथा मानव मात्र पर कलंक एवं कुप्रथा मानते हुए एक कानून पारित कराया जिसे "दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961" नाम दिया जिसके द्वारा दहेज जैसी गम्भीर समस्या पर अंकुश लगाने की कोशिश की गई। इस अधिनियम के महत्व को ध्यान में रखते हुए इसमें कई कमियों एवं खामियां पायी जाने पर इस कानून में समय-समय पर संशोधन किये गये एवं इसे आवश्यकतानुसार कठोर भी बनाया गया। सन् 1984 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी एवं सन् 1986 में प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी की सरकार द्वारा इसमें काफी संशोधन कर इसे यथा सम्भव व्यावहारिक रूप प्रदान करने की कोशिश की गई। इतना ही नहीं सन् 1985 में दहेज प्रतिषेध (वर–वधु भेंट सूची) नियम 1985 भी पारित किया गया है कि विवाह

के समय दूल्हा अथवा दुल्हन को जो भी भेटें दी जाती हैं उसकी सूची वह अपने पास रखेगा अथवा रखेगी।

1.8.2 हिन्दु उत्तराधिकार अधिनियम, 1956

यह कहना गलत नहीं होगा कि 1956 के अधिनियम द्वारा महिलाओं के संपत्ति संबंधी अधिकारों में भी आमूलचूल परिवर्तन लाया गया है। आज एक लड़की अपनी पिता की संपत्ति में से उतनी ही संपत्ति पाने की अधिकारी है जितना कि पुत्र यानि कि जहां तक पिता की संपत्ति का सवाल है लड़का एवं लड़की दोनों ही बराबर रूप से उत्तराधिकारी हैं किंतु जहां तक पैतृक (दादालाई) रूप से प्राप्त संपत्ति का सवाल है आज भी महिला की स्थिति पुरूष जैसी नहीं है। बाप –दादाओं की संपत्ति में से जितना हिस्सा लड़की को मिलता है उससे है कई गुना लड़का प्राप्त करने का अधिकारी है।

मुसलमान उत्तराधिकार- मुसलमानों में उत्तराधिकार सम्बन्धित कानून परम्परा के आधार पर एवं कुरान शरीफ की आयतों के अनुसार सदा से चला आ रहा है एवं महिलाओं के मामले में कानून थोड़ा कठोर है। हालांकि इस कानून में स्वंचय अर्जित तथा पैतृ सम्पत्ति में कोई भेदभाव नहीं है क्योंकि सम्पत्ति में हिस्सा ही पिता की मृत्यू के पश्चात् मिलता है किन्तु फिर भी पिता की जायदाद में से अगर लड़का दो रूपये पाने का अधिकारी है तो लड़की मात्र एक रूपया ही प्राप्त कर सकती है जबकि हिन्दु विधि में पिता की जायदाद में से विधवा, लड़का एवं लड़की तीनों ही बराबर का हिस्सा प्राप्त करने के अधिकारी हैं। पुत्र एवं पुत्री माता का 1/8 हिस्सा अथवा अन्य किसी का कोई हिस्सा न तो वह निकालने के अवशिष्ट् के रूप में हिस्सा पाने के अधिकारी हैं।

1.8.3 हिन्दु विवाह अधिनियम, 1956 -

धारा 13 के तहत पति एवं पत्नी दोनों ही एक – दूसरे के खिलाफ न्यायालय से विवाह – विच्छेद की डिग्री पारित करा सकते हैं। इस कानून का फायदा है कि जहां पति-पत्नी का साथ रहना असम्भव सा प्रतीत हो तो ऐसी स्थिति में दोनों को बांधे रखना मूर्खता है इससे लाभ होने वाला नहीं है बल्कि हानि ही है इससे घर पर शान्ति भंग होती है। ऐसी स्थिति में जहां पर पति-पत्नी के सम्बन्धों के मधुर रहने की गुंजाइश लेश-मात्र भी नहीं है वहां न्यायालय विवाह विच्छेद की डिग्री पारित कर देता है और ऐसा करना उचित भी है। धारा 13 (क) के तहत अगर न्यायालय को एक प्रतिशत भी ऐसी गुंजाइश लगती है कि पति-पत्नी के बीच सम्बदन्ध पुर्नस्थापित हो सकते हैं तो न्यायालय चाहे प्रार्थना विवाह विच्छेद की डिग्री पारित कर सकता है जिसका फायदा यह होता है कि दोनों पक्षकारों को एक वर्ष का समय मिल जाता है जिसमें वह यह निर्णय ले सकें कि उन्हें वैवाहिक संबंधों की पुर्नस्थापना करनी है अथवा तलाक ही लेना है इस अधिनियम की सबसे रोचक धारा 15 है जिसमें तलाक लेने के तत्काल बाद भी पति –पत्नी एक –दूसरे से पुनर्विवाह कर सकते हैं।

1.8.4 मुस्लिम विवाह –विच्छेद अधिनियम, 1939-

यहां तक मुस्लिम महिलाओं में तलाक का सवाल है तो सन् 1939 से पूर्व मुस्लिम महिलाओं की स्थिति तलाक मामले में बहुत ही बदतर थी। तलाक देना मुस्लिम पुरूष का एक निरंकुश अधिकार था। वह जब चाहे अपनी पत्नी को तीन शब्दों का उच्चारण कर तलाक दे सकता था। इतना ही नहीं एक मुस्लिम पुरूष तलाक के बाद केवल इद्त की अवधि तक ही पत्नी को भरण –पोषण का खर्चा देने के लिए बाध्य है इस स्थिति में महिला की स्थिति को और ज्यादा विकृत बना दिया और पति के लिए पत्नी को तलाक देना आसान होने से तलाक एक आम बात बन गई

1.8.5 महिलाओं एवं लड़कियों के अधिनियम, 1956

हमारे संविधान का अनुच्छेद 23 एवं 24 शोषण के विरूद्ध अधिकार के बारे में है एवं मानव दुर्व्यपार और बलात् श्रम का विरोध करता है। यह सर्वविदित है कि भारतीय समाज में यह दो बड़े कलंक सदियों से समाज का एक अंग बनकर चले आ रहे हैं। इस प्रकार के क्रय-विक्रय को खत्म करने के लए हमारे संसद ने 1556 में उपरोक्त अधिनियम पारित किया है जिसका हाल ही में संशोधन भी किया गया है और इसका नाम ही बदलकर "अनैतिक व्यापार (निवारक) अधिनियम, 1956" कर दिया गया है जिसके द्वारा न केवल व्यभिचार बल्कि महिला के साथ होने वाले किसी भी शोषण के विरूद्ध आवाज उठाई गई है। इस कानून के तहत अगर कोई व्यक्ति किसी महिला का शोषण व्यापारिक दृष्टिकोण से करता है तो उसे सख्त सजा देने के प्रावधान किये गये हैं और इस तरह देह व्याशपार से अगर कोई व्यक्ति पैसा कमाता है अथवा वेश्यालय चलाता है अथवा अपनी जगह को वेश्यावृति के कार्य में उपयोग में लाता है अथवा बच्चों को अनैतिक व्यापार की ओर ढकेलता है तो ऐसे दोषी व्यक्ति को सात साल तक की सजा दी जा सकती है। इस नये संशोधन के लागू होने के पश्चात् अनैतिक असामाजिक एवं अश्लील किस्म के नये कार्य करने वालों के मन में डर व्याप्त हुआ है एवं अपराध तथा अनैतिक व्यापार की दर में भी कमी आई है। इसके अलावा होटल, रेस्टोरेन्ट आदि चलाने वालों में लाइसेंस जब्त होने का डर व्याप्त हुआ है जिससे देह व्यापार एवं स्त्री शिष्टता में कमी करने जैसा अपराधों पर अंकुश लगा है। स्त्री का सम्मान भी समाज में बढ़ा है व कानून के डर से महिला पर भी ऐसे घृणित कार्य में संलग्न होने पर पाबन्दी लगी है।

1.8.6 चलचित्र अधिनियम, 1952-

फिल्मों का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता है और यदि इनमें अश्लीलता आदि का चित्रण किया गया हो तो उसका हमारे समाज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है इसलिए 1952 मेंसन 'चलचित्र अधिनियम' पारित किया गया जिसके आधर पर 'फिल्म सेंसर बोर्ड की जिम्मेदारी है कि वह ऐसी फिल्मों पर रोक लगायेगा या फिल्मों के ऐसे दृश्यों को रोकेगा जिनसे महिलाओं को अश्ली ल रूप में दिखाया गया हो तथा जिनसे महिलाओं की मर्यादा भंग होती हो।

1.8.7 स्त्री अशिष्ट (प्रतिबंध) अधिनियम, 1986 -

इस अधिनियम के द्वारा किसी भी माध्यम द्वारा स्त्री शरीर के अश्लील चित्रण पर पूर्णतया प्रतिबंध लगा दिया गया है। इस अधिनियम में कहा गया है किसी भी महिला को इस प्रकार चित्रित नहीं किया जा सकता जिससे उसकी सार्वाजनिक नैतिकता को आघात पहुंचे या उसका मान घटे। यह अधिनियम समस्त प्रकार के विज्ञापनों, फिल्मों, मुद्रित माध्यमों व प्रकाशनों पर लागू होगा।

1.8.8 अपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 1986

इस अधिनियम के द्वारा भारतीय दण्ड संहिता में संशोधन करके उसमें धारा 49 जोड़ी गयी जिसके प्रावधानों के तहत महिलाओं को आत्महत्या के लिए प्रेरित करने या उकसाने, उसके संबंधियों या पति द्वारा क्रूरता करने अथवा स्त्री को शारीरिक या मानसिक रूप से प्रताड़ित करने को गम्भीर अपराध मानते हुए इस अपराध के लिए 3 वर्ष के कारावास तथा अर्थदण्ड की व्यवस्था की गयी है।

1.8.9 मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961-

- इस अधिनियम के द्वारा महिलाओं को कई ऐसे अधिकार तथा विशेष रियायतें दी गयी हैं ताकि महिला अपने मातृत्व की जिम्मेदारियों का निर्वहन कर सके। महिलाओं को शारीरिक, मानसिक तथा भावात्मक शोषण से बचाने और उनके हितों की रक्षा के लिए और कई दूसरे अधिनियमों को लागू किया गया है

1.8.10 विशेषविवाह अधिनियम, 1954

इस अधिनियम के द्वारा महिलाओं को वैवाहिक स्वतंत्रता के साथ-साथ धार्मिक स्वतंत्रता भी प्रदान की गयी है। अधिनियम के अनुसार कोई भी महिला अपना धर्म परिवर्तित किए बिना, किसी अन्य धर्म को मानने वाले व्यक्ति से विवाह कर सकती है।

- सती निवारक (अधिनियम), 1987 एवं राजस्थासन सती (निवारक) अधिनियम, 1987 गर्भावस्था समापन चिकित्सा अधिनियम, 1971
- हिन्दु (विधवा पुनर्विवाह) अधिनियम, 1956 एवं सती (निवारक) अधिनिय, 1987 अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956
- बाल विवाह अवरोध अधिनियम, 1929
- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872

1.9 मानवाधिकार को सुनिश्चित करने में चुनौतियाँ –

मानवाधिकार किसी भी सभ्य समाज की आधारशिला है। चाहे किसी भी प्रकार की शासन-व्यवस्था हो, मानवाधिकार प्रत्येक शासन व्यवस्था के अभिन्न अंग हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में तो इसकी अनिवार्यता कुछ और बढ़ जाती है। यदि बृहत रूप से चिंतन मनन करें तो किसी भी समाज के विकास को, उस समाज के लोगों को उपलब्धि मानवाधिकारों की कसौटी पर कसा जा सकता है। यदि आम व्यक्ति को पर्याप्त मानवाधिका उपलब्ध हैं तो उस समाज विशेष को सभ्य, संस्कृत और विकसित कहा जा सकता है। यह मानवाधिकारों का महत्व ही है कि आज दुनियाभर के देशों में आम जनता को मानवाधिकारों से सुसज्जित किया जा रहा है। मानवाधिकार एक गतिशील अवधारणा है, जो समय के अनुरूप बदलती रहती है। पहले जो अधिकार उपलब्ध नहीं थे, उन्हें आजकल प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त करने के अवसर उपलब्ध हैं। आज दुनियाभर में मानवाधिकारों की रक्षा के लिए आंदोलन चल रहे हैं। इनमें सबसे मुख्य है, राज्य द्वारा मानवाधिकार उल्लंघन के विरूद्ध गैर-सरकारी संगठनों द्वारा आंदोलन। चूंकि मानवाधिकार प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक हैं इसलिए प्रत्येक आदमी को इनके बारे में जानने और इनके प्रति जागरूक रहने की जरूरत है। और इसी पावन उद्देश्य से इस पुस्तक का प्रणयन किया गया है।

मानवाधिकारों की सार्वजनीन घोषणा की- की स्वीकृति के बाद से ही इस प्रश्न पर काफी विवाद उठते हैं कि कौन-से अधिकार अधिक महत्वपूर्ण हैं और–से कम कुछ राज्यों के प्रतिनिधि यह आग्रह करते रहे कि आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की अपेक्षा नागरिक तथा राजनीतिक अधिकार अधिक महत्वपूर्ण है। उनके मन में विकास के अधिकार को स्वीकार करने के बारे में भी गंभीर संकोच थे, जिसका कारण यह था कि इन अधिकारों पर कारगार ढंग से अमल किए जाने पर विश्व की आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति के मौजूदा स्वरूप में बहुत उलट-फेर हो जाना आवश्यक हो जाएगा। परंतु कुछ अन्य देशों ने आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों एवं विकास के अधिकार पर जोर दिया। हम कह सकते हैं कि सभी मानवाधिकारों के आभिभाज्य मान लिए जाने के साथ ही, सिद्धांत इन विवादों का निपटारा हो गया है। 171 देशों और सैकड़ों गैर-सरकारी संस्थाओं के सम्मेलन के बाद जारी की गई घोषणा में स्पष्ट शब्दों में कहा गया कि "सभी मानवाधिकार सार्वजनीन, अभिभाज्य, अंतर्निभर और अंतर्सबद्ध हैं"। साथ ही स्पष्ट शब्दों में यह भी कहा गया है कि नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक, सभी प्रकार के व्यक्तिगत अधिकारों तथा "राज्यों के अंतर्गत और राज्यों के समूह के अंतर्गत" सामूहिक अधिकारों का एक मात्र जमिन लोकतंत्र है।

1.10 दलित अधिकार

अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित स्थान को इस जाति का उपयुक्त व्यक्ति उपलब्ध न होने पर इसे अनुसूचित जनजाति के व्यक्ति से भरा जा सकता है इस प्रकार समाज का यह वर्ग अब संवैधानिक दृष्टि से पूर्ण रूप से संरक्षण प्राप्त है। इतना ही नही समाज के इस वर्ग को अब सत्ता में भागीदारी भी सुनिश्चित करने कर दी गई है। सत्ता के महत्वपूर्ण क्षेत्र पंचायती राज तथा स्थानीय स्वशासन में इस वर्ग के लिए प्रभावपूर्ण आरक्षण की व्यवस्था की गई है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 243 (घ) में इस वर्ग के लिए पंचायती राज संस्थाओं में जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित कर दिए गए हैं। पिछले दिनों 'सरस्वती देवी बनाम श्रीमती शान्ति देवी के वाद में उच्चतम न्यायालय ने इस व्यवस्था पर अपनी पुष्टि की मुहर लगा दी है।

इस वर्ग पर होने वाले अत्याचारों पर विचार करने पर यह तो निर्विवाद रूप से सत्य है कि समाज के इस पिछड़े वर्ग पर अतीत में कई प्रकार से कर ढ़ाये गए हैं। इस वर्ग के लोगों के साथ है अपृश्यता का व्यवहार, सार्वजनिक स्थानों पर इनके प्रवेश का निषेध आदि अतीत में आम बात रही है। निश्चित रूप से ही इस वर्ग के साथ ऐसा व्यवहार मानवाधिकार का उल्लंघन था। लेकिन कालांतर में परिस्थितियां बदली स्थिति में परिवर्तन आया। देश की विधायिका के द्वारा 1955 में सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के इन कृत्यों को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया इस वर्ग के लोगों को किसी दुकान, उपहार गृह, होटल, मनोरंजन स्थल, धर्मशाला, सराय, मुसाफिर खाना, आदि आदि में प्रवेश करने से रोकना।

1. वृत्ति अजीवका या किसी काम में नियोजन देने से इन्कार करना।
2. किसी नदी, जलधार, स्त्रोत, कुएं, तालाब, स्नान घर, शमशान , कब्रिस्तान, सड़क मार्ग, आदि आदि के उपयोग से निवारित करना।
3. किसी सामाजिक या धार्मिक रूढ़ि, प्रथा या कर्मों का अनुपालन करने , किसी धार्मिक, सामाजिक या सांस्कृतिक जूलूस में भाग लेने या ऐसा जूलूस निकालने से रोकना।

1989 में इस दिशा में एक और प्रभावी कानून "अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम '' पारित किया गया। इस अधिनियम में इस वर्ग के लोगों पर आए दिन होनेवाले अत्याचारों के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई है।

जब यह अधिनियम पारित हुआ तो "जयसिंह बनाम यूनियन बैंक आफ इण्डिया '' के वाद में इसकी संवैधानिकता को चुनौती दी गई। राजस्थान उच्च न्यायालय ने इस चुनौती को खारिज करते हुए इस अधिनियम को संवैधानिक करार दिया। इसी विषय पर उच्चतम न्यायालय के सामने एक और वाद "स्टेंट आफ मध्यप्रदेश बनाम रामकिशन बालोठिया" का आया। इसमें उच्चम न्यायालय ने यह कहा कि –"अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण अधिनियम की धारा

३(१) में जिन अपराधों का उल्लेख किया गया है, उनका निवारण समाज के इस कमजोर एवं दलित वर्ग के लोगों के लिए गरिमा एवं सम्मानपूर्वक जीने का मार्ग प्रशस्त करता है।''

दलित अथवा पिछड़े वर्गों के हित में बनाए गए इन कानूनों एवं न्यायिक निर्णयों से इस वर्ग में आत्मविश्वास का संचार हुआ है। उन्हें गरिमा एवं सम्मान पूर्वक जीने का अवसर उपलब्ध हुआ है। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के मानवाधिकारों का संरक्षण भारत में बीसवीं शताब्दी की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है।

1.12 वंचित वर्ग

लोकतांत्रिक व्यवस्था में, जिसमें शासन सत्ता बहुमत के पास होती है, अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा प्रश्न विशेष महत्वपूर्ण होता है और सरकार का यह प्रमुख कर्तव्य माना जाता है कि वह अल्प संख्यकों के अधिकार को सुरक्षित रखने तथा उन्हे समुचित विकास का अवसर देने के लिए सतत् प्रयत्न शील रहे। प्रोफेसर हुमायुँ कबीर ने ठीक ही लिखा है कि 'लोकतंत्र के अथवा अन्य किसी भी शासन व्यवस्था में अल्प संख्यंकों का कोई प्रश्न नही उठता, जब तक लोकतंत्र नही होगा यह समस्या इस रूप में कभी भी नही उठेगी। इसका स्पष्ट कारण यह है कि लोकतंत्र में बहुमत शासन कर्ता है जबकि गैर- लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में शासन करने का अधिकार प्राय: अल्प मत के हाथों में होगा।

भारतीय संविधान में अल्प संख्यकों के हितों को सुरक्षित करने वाले प्रावधान – संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 में भाषा, धर्म और संस्कृति पर आधारित अल्प संख्यकों को संरक्षण देने का प्रावधान किया गया है। इसका अर्थ यह है कि संविधान भाषाई, धार्मिक, और सांस्कृतिक अल्प संख्यकों को मान्य ता प्रदान करता है। इस संबंध में एक कठिनाई सांस्कृतिक अल्प संख्यकों को परिभाषित करने के संबंध में उठती है अधिकांश विचारकों का मत है कि संस्कृति शब्द इतना अस्पष्ट और उलझा हुआ है कि इसके आधार पर विभिन्न समूहों को श्रेणीबद्ध करना कठिन है।

भारतीय संविधान के कुछ उपबंध सामान्य प्रकृति के हैं जो बहुमत और अल्पसंख्यक वर्ग के सदस्यों को समान रूप से अधिकार और संरक्षण प्रदान करते है उनके द्वारा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में समानता पाए जाने का प्रयत्न किया गया है। उदाहरणार्थ अनुच्छेद 14,15, और 16 इसी प्रकार के हैं और इनके द्वारा विविध के समक्ष समानता तथा विधि के समान संरक्षण का आश्वासन सभी को दिया गया है और धर्म, जाति, मूल वंश आदि के आधार पर भेदभाव को वर्जित ठहराया गया है संविधान के 16 वें अध्याय में पृथक रूप से अनुसूचित जातियों और जनजातियों तथा एंग्लोंग सम्प्रकदाय के सदस्यों के लिए कुछ सुविधाएं देने की व्यवस्था की गई है।

1.11 भारत के अल्प संख्यकों की श्रेणियां -

भारत में अल्पसंख्यकों को मोटे रूप से दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

1. धार्मिक अल्पसंख्यक एवं
2. भाषाई अल्पसंख्यक

बच्चों के अधिकार –बच्चे किसी भी देश का भविष्य होते हैं क्योंकि उन्ही को कल का नागरिक बनकर अहम फैसले लेने होते हैं। बच्चे बेहद कोमल हृदय वाले होते हैं। इसलिए उनके साथ एक अलग तरह का व्यवहार किया जाना चाहिए। दुर्भाग्य से वास्तविकता की धरातल पर ऐसा होता नही हैं। दुनिया भर में बच्चों के साथ अमानवीय और अनैतिक व्यवहार किया जाता है जिस कारण उनका स्वाभाविक विकास रूक जाता है। बाल श्रम के रूप में बाल अत्याचार का एक रूप हमारे सामने है। स्कूल जाने और दादा-दादी से लोरियां सुनने की उम्र में मासूम बच्चों को मजदूरी की आग में झोंक दिया जाता है। अपुष्ट सूत्रों के मुताबिक आज भारत में लगभग 08 करोड से भी अधिक बच्चें विभिन्न क्षेत्रों में मजदूरी करते हैं ऐसा ही बाल अपराधों के मामले में भी है। दुनियां के हर हिस्से में बच्चे आज यौन दुर्व्यहार, प्राकृतिक दुष्किर्म आदि का दंश झेलने को अभिशप्त है।

बच्चों के खिलाफ तो अपराध होते है लेकिन कई तो उन्हे अपराध के एक उपकरण के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता है। तस्करी के मामलों में बच्चों का उपयोग दुनिया भर में किया जाता है। इसके अलावा बच्चे और बच्चियों, बलात्कार, अपहरण, खरीद-फरोख्त, बाल विवाह और बाल वेश्यावृत्ति का भी शिकार होती रहती हैं। नोएडा का निठारीकांड, बच्चों की स्थिति की कहानी कहने को काफी है। विभिन्न प्रकार के अत्याचारों से बच्चों को संरक्षण प्रदान करने के लिए दुनिया भर में बच्चों को कुछ विशेष अधिकार दिए गए हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम बच्चों के मानवाधिकारों की चर्चा करेंगें।

बाल अधिकारों को संरक्षण प्रदान करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने बच्चों के अधिकारों से संबंधित अभिसमय को स्वीकृति सन् 1980 में प्रदान की और 02 सितंबर, 1990 से यह अभि समय लागू हो गया। इस अभिसमय में कहा गया था कि बचपन विशेष देखभाल और सहायता का पात्र है बच्चे को अपने व्यक्तित्व के पूर्ण और सुसंगत विकास के लिए पारिवारिक माहौल में आनंद, स्नेह और सौहार्द होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने 1 अप्रैल 2010 से जम्मू कश्मीर को छोड़कर संपूर्ण भारत में 06 से 14 आयु वर्ग के बच्चों (कक्षा 1 से 8) के निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिनियम भी लागू कर दिया है। इस अधिनियम को निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम भी कहते है। इस अधिनियम के अनुसार 06 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के बालकों को कक्षा 1 से 8 तक की शिक्षा निशुल्क एंव अनिवार्य रूप से प्राप्त करने का अधिकार है।

1.13अभ्यास कार्य

प्रश्न : मानवाधिकार में स्त्री अधिनियमों का वर्णन कीजिए?

प्रश्न : मानवाधिकार की प्रकृति के सन्दर्भ में अपने विचार प्रस्तुत कीजिए?

प्रश्न : प्रमुख विवाह अधिनियम कौन-कौन से हैं? वर्णन कीजिए।

इकाई 2 : मानवाधिकार का नीतिगत परिप्रेक्ष्य

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 मानवाधिकार के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हो रहे प्रयास

2.4 मानवाधिकार के लिए अंतरराष्ट्रीय घोषणा पत्र

2.5 मानवाधिकार सम्बन्धी घोषणा पत्र के मुख्य तत्व और विशेषता –

2.6 नागरिक अधिकार कानून

2.7 सामाजिक सांस्कृतिक अधिकार कानून

2.8 भारतीय संविधान की भूमिका

2.9 मानवाधिकार आयोग

2.10 संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना

2.1 प्रस्तावना

अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की स्थापना करना और सामूहिक तथा प्रभावपूर्ण प्रयत्नों से आने वाली ख़बरों का उन्नमूलन करना, शांति भंग करने वाली चेष्टाओं को दबाना तथा न्याय और अंतरराष्ट्रीय कानून के सिद्धांतों के आधार पर शांति पूर्ण साधनों से उन अंतरराष्ट्रीय विवादों और समस्याओं को सुलझाना जिससे शांति भंग होने की आशंका हो। सब राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों का विकास करना।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1. मानवाधिकार के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हो रहे प्रयास के बारे में जान सकेंगे।
2. मानवाधिकार के लिए अंतरराष्ट्रीय घोषणा पत्र से अवगत हो सकेंगे।
3. मानवाधिकार सम्बन्धी घोषणा पत्र के मुख्य तत्व और विशेषता के बारे में जान सकेंगे।
4. नागरिक अधिकार कानून से परिचित हो सकेंगे।
5. सामाजिक सांस्कृतिक अधिकार कानून से परिचित हो सकेंगे।
6. मानवाधिकार के नीतिगत परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में भारतीय संविधान की
7. भूमिका को जान सकेंगे।
8. मानवाधिकार आयोगके बारे जान सकेंगे।
9. संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना किस उद्देश्य को लेकर की गई है, को जान सकेंगे।

2.3 मानवाधिकार के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हो रहे प्रयास

अमेरिका के संविधान में यद्यपि भारत और पूर्व सोवियत संघ के संविधानों की तरह नागरिकों के मूल अधिकारों को किसी अध्याय में लिपिबद्ध नहीं किया गया है, तथापि संविधान तथा अधिकार पत्र में ऐसी अनेक व्यवस्थाएँ हैं जिनमें नागरिकों के अधिकारों तथा उनकी स्वतंत्रता की रक्षा की व्यवस्था की गयी है।

मूल अमेरिकी संविधान में नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा के सम्बन्ध में कोई व्यवस्था नहीं थी। बाद में जेफरसन की इस धारणा से प्रभावित होकर कि अधिकार पत्र एक ऐसी चीज है जिसे लोगों को पृथ्वी पर प्रत्येक सरकार के विरुद्ध प्राप्त करने का अधिकार है और जिससे किसी न्यायोचित सरकार को इंकार नही करना चाहिए।

काँग्रेस ने 25 दिसम्बर 1789 को इस दृष्टि से 12 संशोधन प्रस्ताव राज्यों को अनुसमर्थन के लिए भेजे। इनमें से 10 संशोधनों को राज्यों का समर्थन प्राप्त हो गया और जिन्हें 1791 में लागू कर दिया। ये प्रथम दस संशोधन ही सामूहिक रूप से अधिकार-पत्र कहलाते हैं जिनमें नागरिक स्वतंत्रताओं का पर्याप्त विवरण मिलता है।

1. **क़ानूनी सहायता (legal help) -** संविधान के छठे संशोधन में यह व्यवस्था है कि अभियुक्त अपनी रक्षा के लिए किसी वकील की सहायता ले सकता है। किसी अभियुक्त की आर्थिक स्थिति कमजोर हो तो उसे राज्य की ओर से सहायता प्रदान की जाती हैं।
2. **शीघ्र एवं खुले न्यायालय में सुनवाई (causing in quick and open court)-** संविधान के छठे संशोधन के अनुसार अभियुक्त को फौजदारी मामलों में शीघ्र एवं खुले न्यायालय में सुनवाई का अधिकार है।
3. **दोषारोपण के विरुद्ध (oppose to accusation)-** संविधान के पाँचवें संशोधन में व्यवस्था है कि किसी अभियुक्त को फौजदारी मुकदमें में अपने विरुद्ध गवाही देने का बाध्य नहीं किया जा सकता है।
4. **जूरी द्वारा जाँच (Examination with Juri)-** अमेरिकी संविधान नागरिकों को या अभियुक्त को यह अधिकार प्रदान करता है कि फौजदारी मामलों की वह जूरी द्वारा शीघ्र व् सार्वजनिक जाँच करवा सकता है और दीवानी मामलों में मुक़दमे की राशि 20 ,000 डॉलर हो तो वहाँ भी इस अधिकार का प्रयोग किया जा सकता है।

पाँचवे गणराज्य के संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट कहा गया है कि फ्रांस के वासी 1789 ई. की घोषणा में परिभाषित और 1946 ई. के संविधान में सम्पुष्टित एवं संपूरित राष्ट्रीय संप्रभुता और मानव अधिकार के प्रति अपनी भक्ति की निश्चयपूर्वक घोषणा करते है।

इस प्रकार फ्रांस के पाँचवे गणराज्य में 1789 की मानव अधिकारों की घोषणा में परिभाषित किये गये अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं तथा 1946 जे चौथे गणराज्य के संविधान के अधिकारों को स्वीकारो किया गया है। इसके अतिरिक्त इस संविधान में मानव अधिकारों का संकेत मिलता है।

फ्रांस के नागरिकों को महत्वपूर्ण मौलिक अधिकार प्रदान करते हैं लेकिन अधिकारों की इस व्यवस्था में कमी करने वाला यह तत्व यह है कि इन अधिकारों का उल्लेख संविधान के किसी अध्याय में नहीं किया गया है, इन अधिकारों का उल्लेख प्रस्तावना में किया गया है जो संवैधानिक शक्ति या कोई अन्य न्याय योज्य स्थिति (justiciable) प्राप्त नहीं हो सकती है।

प्रस्तावना स्वयं में न तो शासन की शक्ति का स्रोत होती है और न ही इसके माध्यम से शासन की शक्ति को वंचित किया जा सकता है अर्थात यदि शासन इन अधिकारों का उल्लंघन करता तो इनका रक्षक कोई नहीं है। नागरिक अधिकारों की रक्षा करना शासन का कर्त्तव्य है, उसे किसी कानूनी उपबंध का पालन करना अनिवार्य नही है।

अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थाएँ (international human right of of organization) – संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 68 में उपबंध दिया गया है कि आर्थिक और सामाजिक परिषद, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में तथा मानवाधिकारों की अभिवृद्धि के लिए, आयोग और ऐसे अन्य आयोगों की स्थापना करेगी, जिनकी परिषद् के कार्यों के पालन के लिए आवश्यकता है। इसके अनुसरण में आर्थिक और सामाजिक परिषद् ने सात आयोगों की स्थापना की है। यह है मानवाधिकार आयोग, सांख्यिकीय आयोग, नारकोटिक औषधि, अपराध निवारण और दंड न्याय आयोग।

2.4 मानवाधिकार के लिए अंतरराष्ट्रीय घोषणा पत्र

व्यक्ति के मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु संयक्त राष्ट्र संघ काफी समय से प्रयासरत है। संयुक्त राष्ट्र संघ का मजबूती से विश्वास है कि यदि दुनिया, सामाजिक प्रगति स्वतंत्रता समानता शांति, आदि के साथ आगे बढे तो मानव की गरिमा और मानवाधिकारों की रक्षा आसानी से की जा सकती है। आज संयुक्त राष्ट्र संघ समकालीन विश्व में मानवाधिकारों के लिए संघर्ष लोगों के लिए केन्द्रीय भूमिका अदा कर रहा है। अपनी एक घोषणा में संयुक्त राष्ट्र संघ ने कहा था कि प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को अपने यहाँ एक राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्था की स्थापना करनी चाहिए जो उस राष्ट्र विशेष में मानवाधिकारों के लिए कार्य करेगा। इस संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र संघ ने सबसे पहली चर्चा सन 1996 में की थी।

संयुक्त राष्ट्र संघ के सन 1996 की आर्थिक सामाजिक परिषद में मानवाधिकारों पर चर्चा की गई थी। सन 1960 के दशक में इस बारे में और विस्तार से चर्चा दुनियाभर में की गई थी।

दूसरे विश्व युद्ध के दौरान फासीवादी शक्तियों के विरुद्ध युद्धरत देशों और उनके मित्र देशों के प्रतिनिधियो की कई बैठकें और सम्मलेन हुए। जनवरी 1942 से ये देश संयुक्त राष्ट्र कहलाने लगे। इन बैठकों और सम्मेलनों में युद्ध के संचालन के लिए सामूहिक रणनीतीयों और जिन लक्ष्यों के लिए वे लड़ रहे थे उनसे सम्बन्धित प्रश्नों पर विचार-विमर्श और समझौते हुए। ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ और चीन के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन संयुक्त राज्य अमेरिका के डंबार्टन ओक्स नामक स्थान में हुआ, जिसका उद्देश्य एक शांति-रक्षक संस्था की योजना बनाना था, डंबारटन ओक्स में तैयार की गई योजना पर 25 अप्रैल 1945 को अमेरिका के ही सान फ्रांसिस्को नगर में आयोजित सम्मेलन में चर्चा हुई।

इस सम्म्मेलन में 50 देशों प्रतिनिधि शामिल हुए, जिनमे भारत के प्रतिनिधि भी थे। 26 जून 1945 को सम्मेलन में शरीक सभी देशों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकार पत्र पर हस्ताक्षर किये। इस अधिकार पत्र में संयुक्त राष्ट्र संघ के गठन की व्यवस्था की गई है। यह अधिकार पत्र २४ अक्टूबर 1945 को लागू हो गया। इसमें फासीवाद बर्बरता के विरुद्ध युद्धरत देशों की जनता की आकांक्षाये प्रतिबिम्बित हुई और “मूल मानवाधिकारों” तथा “व्यक्ति की गरिमा” में आस्था का इजहार किया गया।

मानवाधिकारों की सार्वजनीन घोषणा कोई संधिया क़ानूनी समझौता, अथवा बंधनकारी वैधानिक दस्तावेज नहीं, बल्कि संकल्प और सिध्दांत की घोषणा थी। तथापि उसने कई देशों के संविधानो और वैधानिक प्रणालियों को प्रभावित किया।

उक्त घोषणा के बाद जैसा कि हम पहले कह चुके है, कई और घोषणाएँ की गई है। खास खास मसलों और विशिष्ट पहलुओं के बारे में मानवाधिकार विषयक सिध्दांत विस्तृत रूप में प्रस्तुत किए गए है। साथ ही कई प्रसंविदाओ और अभिसमयों में भी ख़ास ख़ास पहलों के सम्बन्ध में विशिष्ट अधिकारों की विषद व्याख्याएँ की गई है। एक अर्थ में इन प्रसंविदाओ और अभिसमयो को अधिक महत्वपूर्ण माना जा सकता है। क्योंकि इन हस्ताक्षर करने वाले देशों ने इनका पालन करने की स्पष्ट सहमति दी हैं।

मानवाधिकारों की समकालीन अवधारणा के विकास के कतिपय पहलुओ का जिक्र करना उपयोगी होगा। इस विकासमन अवधारणा की चर्चा सामान्यत: मानवाधिकारों के तीन चरणों को ध्यान में रखकर की जाती है। प्रथम चरण के अधिकार वे थे जिनका सम्बन्ध मुख्य रूप से व्यक्ति के नागरिक तथा राजनितिक अधिकारों से या “स्वतंत्रता अभिमुख” अधिकारों से था। इनका उद्धेश्य “सरकारों को व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं में हस्तक्षेप करने से अपने हाथ रोकने के लिए उनपर निषेधात्मक दायित्व” आरोपित करना था। वे अधिकार 19वीं सदी से आरंभ होने वाले सभी उदारवादी और लोकतान्त्रिक आंदोलनों के प्रमुख प्रयोजनों में से थे।

दूसरे चरण के अधिकार वे है, जिन्हें "सुरक्षा अभिमुख" कहा जा सकता है, और इनमे सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सुरक्षा की व्यवस्था है। सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों की प्रकृति सकरात्मक है, क्योंकि इनके कारण राज्यों के लिए लाजिमी हो जाता है कि वे इन अधिकारों का पालन सुनिश्चित करे, मानवाधिकारो की सार्वजनीन घोषणा उन सिद्धांतो के सम्बन्ध में एक एक इसी आम सहमति को प्रतिबिंबित करती है जो प्रथम तथा द्वितीय चरणों के अधिकारों का आधार है।

तृतीय चरण के मानवाधिकारो का उद्भव अपेक्षाकृत हाल में हुआ है। उनका विकास उन नए सरोकारों के उत्तर में हुआ है, जिनके सम्बन्ध में हाल के वर्षो में अंतरराष्ट्रीय आम सहमति पैदा हुई है। इनमे पर्यावरण सम्बन्धी, सांस्कृतिक तथा विकासात्मक अधिकारों का समावेश है। उनका सम्बन्ध व्यक्तियों की बजाय समूहों और जन – समाजो के अधिकारों से है, और इनमें आत्म –निर्णय का अधिकार, विकास का अधिकार, आदि शामिल है। इन अधिकारों के सम्बंध में अंतरराष्ट्रीय आम सहमती पैदा करने में विकासशील देशों ने प्रमुख भूमिका निभाई है। 1986 में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा अपने गई विकास के अधिकार की घोषणा इन अधिकारों का सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण है।

2.5 मानवाधिकार सम्बन्धी घोषणा पत्र के मुख्य तत्व और विशेषता -

50 देशों के प्रतिनिधि शामिल हुए, जिनमें भारत के प्रतिनिधि भी थे। 26 जून 1945 को सम्मलेन में शरीक सभी देशों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकार-पत्र पर हस्ताक्षर किए। इस अधिकार-पत्र में संयुक्त राष्ट्र संघ के गठन की व्यवस्था की गयी है। यह अधिकार –पत्र 24 अक्टूबर 1945 को लागू हो गया। इसमें फासीवादी बर्बरता के विरुद्ध युद्धरत देशों की जनता की आकांक्षाएं प्रतिबिंबित हुई और "मूल मानवाधिकारों'' तथा "व्यक्ति की गरिमा और महत्त्व" में आस्था का इजहार किया गया।

मुख्य तत्व-

1. मानव अधिकार कानून में भी पद सोपान क्रम है।
2. ऐसे कोई भी मानव अधिकार नहीं है जो व्यक्ति की उसके मानव अधिकारों से अलग करते हों।
3. संस्कृतियों और सभ्यताओं की भिन्नता, विश्वासों तथा परम्पराओं का अंतर तथा ऐतिहासिक और आकाँक्षाओं से जनित भिन्नताओं के कारण मानव अधिकारों के अर्थ तथा परिभाषाओं में अत्यधिक देखने को मिलता है।

विशेषता -

1. **सभी मूल अधिकार सभी को उपलब्ध नहीं-** भारतीय मूल अधिकारों की विशेषता यह है कि जहाँ कुछ अधिकार सभी व्यक्तियों को अर्थात नागरिकों और विदेशियों दोनों को उपलब्ध है वहाँ कुछ केवल भारतीयों को उपलब्ध है।
2. **आर्थिक स्वतंत्रता का आभाव-** मूल अधिकार भारत में राजनितिक लोकतंत्र की गारण्टी है आर्थिक लोकतंत्र की नहीं। ये नागरिकों को भाषण, अभिव्यक्ति, संघ, संगठन, भ्रमण आदि की स्वतंत्रताएँ प्रदान करते है, परन्तु सोवियत संघ के संविधान की भांति कार्य, विश्वास, आर्थिक, और सामाजिक सुरक्षा आदि को प्रदान नही करते है।

3. निरपेक्षता का आभाव- मूल अधिकार निरपेक्ष, अनुल्लंघनीय या अहरणीय नहीं। राज्य इन्हें राष्ट्रीय हित, सुरक्षा, शांति, व्यवस्था, स्वास्थ्य, नैतिकता आदि के नाम पर मर्यादित, प्रतिबंधित या स्थगित कर सकता है। भारत में मूल अधिकार और मर्यादायें दोनों वाद योग्य है। संकटकाल में राष्ट्रपति प्राण और दैहिक स्वतंत्रता को छोड़कर उदघोषणा द्वारा नागरिकों को न्यायालय के संरक्षण से वंचित कर सकता है।

4. परिवर्तनीय- मूल अधिकार स्थायी नहीं। इन्हें परिवर्तित या समाप्त किया जा सकता है। ये वाद योग्य हैं परन्तु स्थायी नहीं। जब कभी न्यायालय के निर्णय कार्यपालिका की सामजिक और आर्थिक नीतियों के विरुद्ध गये हैं तब ही संवैधानिक संशोधनों का सहारा लेकर उन्हें प्रभावहीन बना दिया गया।

5.अधिकारों का दोहरा स्वरुप- मूल अधिकारों में जहाँ कुछ मूल अधिकारों निषेधज्ञायें हैं जो राज्य को कुछ कार्य करने से मना नही करती है वहाँ कुछ मूल अधिकार सकारात्मक आदेश हैं जो राज्य को कुछ कार्य करने के लिए कहते हैं। उदाहरणतः जहाँ राज्य का कोई कार्य नागरिकों को कानून के समक्ष समानता और कानून के समान संरक्षण से वंचित नही कर सकता यहाँ वह कानून द्वारा पिछड़े हुए वर्गों अनुसूचित जातियों अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष व्यवस्थाएं कर सकता है।

6.वाद योग्य- राज्य यदि किसी व्यक्ति को मूल अधिकारों से वंचित करता है तो वह न्यायालयों का संरक्षण प्राप्त कर सकता है तथा न्यायालय द्वारा उन्हें लागू कर सकता है। न्यायालय इस बात का निर्धारण करता है की मूल अधिकारों पर लगायी गयी मर्यादाएं उचित है या नहीं। यही मर्यादाएं उचित नहीं या वे संवैधानिक धाराओं का उल्लंघन करते है या वे अधिकार शक्ति का अतिक्रमण करते है तो न्यायालय मर्यादाओं को अवैध घोषित कर सकता है। परन्तु न्याय की यह शक्ति विकास के क्रम में बाधा प्रस्तुत नहीं कर सकती।

7.अस्पष्टता और अतिव्यापता – मूल अधिकार विस्तृत होते हुए भी अस्पष्ट है। इनमे अतिव्यापता पायी जाती है जो अंततः भ्रांतियों और संसद तथा न्यायालय में संघर्ष को जन्म देती है। उदाहरतः संविधान में सार्वजानिक उद्देश्यों, मानव शरीर के व्यापर, बेगार कठोर व्यवसाय, अल्पसंख्यक आदि

शब्दों को स्पष्ट रूप से परिभाषित नही किया गया। मूल अधिकारों को बार-बार लिखा गया है और कुछ को भिन्न-भिन्न अध्यायों में लिखा गया है। ये तत्व भ्रांतियों को उत्पन्न करते हैं। व्यापार को स्वतंत्रता पूंजी के केन्द्रीकरण को रोकने की व्यवस्था से मेल नही खाती।

8.सिद्धान्त और व्यवहार में भिन्नता – सिद्धांत रूप में नागरिकों के मूल अधिकार अत्यधिक प्रभावपूर्ण प्रतीत होते हैं परन्तु व्यवहार में उनपर लगाई गई मर्यादाओं ने उन्हें अवास्तविक बना दिया है। उदाहरणतः समानता के अधिकार में संरक्षित भेदभाव की व्यवस्था है, स्वतंत्रता के अधिकार में पी.डी.ए. भारत सुरक्षा अधिनियम और राष्ट्रीय सुरक्षा विद्यमान है, और निर्धनता शिक्षा के अधिकार को अवास्तविक बना देती है।

2.6 नागरिक अधिकार कानून

व्यक्ति के मनवाधिकारो के संरक्षण हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ काफी समय से प्रयासरत है। संयुक्त राष्ट्र संघ का मजबूती विश्वास है कि यदि दुनिया, सामाजिक प्रगति, स्वतंत्रता, समानता, शांति आदि के साथ आगे बढ़े तो मानव की गरिमा और मानवाधिकारो की रक्षा आसानी से की जा सकती है। आज सयुंक्त राष्ट्र संघ समकालीन विश्व में मानवाधिकारो के लिए संघर्षरत लोगो के लिए केन्द्रीय भूमिका अदा कर रहा है। अपनी एक घोषणा में संयुक्त राष्ट्र संघ ने कहा था कि प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को अपने यहां एक राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्था की स्थापना करनी चाहिए जो उस राष्ट्र विशेष में मानवाधिकार के संरक्षण के लिए कार्य करेगा। इस सन्दर्भ में संयुक्त राष्ट्र संघ ने सबसे पहले चर्चा 1996 की थी।

संयुक्त राष्ट्र संघ के सन 1996 की आर्थिक सामाजिक परिषद् में मानवाधिकारों पर चर्चा की गयी थी। सन 1960 के दशक में इस बारे में और भी विस्तार से चर्चा दुनिया में की गयी। इसके बाद सन 1978 में जेनेवा में अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकारों पर एक सम्मलेन हुआ।

1789 में फ्रांसिसी क्रांति हुई। उस साल 14 जुलाई को पेरिस की जनता द्वारा राज्य कारागार बास्तील का ध्वंस निरकुंश तंत्र और फ्रांस की पुरानी राज्य-व्यवस्था के अंत का सूचक था। जून 1789 से ही फ्रांस की राष्ट्रीय सभा की बैठके आरम्भ हो गयी थी। उसने फ्रांस के लिए तैयार किये जाने वाले नए संविधान की प्रस्तावना के रूप में 26 अगस्त 1789 को मानव और नागरिक के अधिकारों की घोषणा अंगीकार की। इस घोषणा का प्रभाव सचमुच अंतरराष्ट्रीय था। उससे युरोप के लगभग सभी देशों को और मध्य और दक्षिण अमेरिका और बाद में एशिया तथा अफ्रीका के देशों के क्रन्तिकारी एवं लोकतान्त्रिक आंदोलनों को प्रेरणा मिली।

मानवाधिकार मोटे रूप में नैतिक और वैध हो सकते है। नैतिक अधिकार वे होते है जो व्यक्तियों की नैतिकता पर आधारित होते है। इन अधिकारों को राज्य के नियमों का अनुमोदन प्राप्त नही होता है

और इसलिए इसका उल्लंघन भी वैधानिक रूप से दंडनीय नही माना जाता है। इनका पालन व्यक्ति अपने अन्तः करन अथवा स्वाभाविक प्रेरणा से करता है।

नैतिक अधिकारों के विपरीत वैध अधिकार वे होते है जो राज्य के कानूनों के मान्य तथा रक्षित होते है और लोकतान्त्रिक राज्यों में सामान्यतया इन अधिकारों को न्यायिक संरक्षण प्राप्त होता है। वैध अधिकारों में नागरिक और राजनैतिक दोनों प्रकार के अधिकार सम्मिलित होते है। व्यक्तियों को इनका अनिवार्य से पालन करना पड़ता है। इनका उल्लंघन करने पर राज्य द्वारा व्यक्ति को दण्डित किया जा सकता है।

भारतीय संविधान द्वारा भारतीय नागरिकों को सात मूल अधिकार प्रदान किये गये थे, किन्तु 44 वे संविधानिक (1979) द्वारा संपत्ति के अधिकार को मूल अधिकार के रूप में समाप्त कर दिया गया है। अब संपत्ति का अधिकार केवल एक क़ानूनी-अधिकार के रूप में है।
इस प्रकार अब भारतीय नागरिकों को निम्नलिखित 6 मूल अधिकार प्राप्त है। –

1. समानता का अधिकार
2. स्वतंत्रता का अधिकार
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार
4. धार्मिक का स्वतंत्रता का अधिकार
5. संस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

2.7 सामाजिक सांस्कृतिक अधिकार कानून

सामाजिक सांस्कृतिक अधिकार कानून 16 दिसम्बर 1966 को पारित हुआ और 3 जनवरी 1976 से लागू किया गया। मानवाधिकारों की सार्वजनीन घोषणा ने संयुक्त राष्ट्र संघ के लिए इस घोषणा के खास-खास पहलुओं के सम्बन्ध में प्रसंविदाए, अभी समय, घोषणायें और अनुशंसाए तैयार करने के लिए आधार प्रस्तुत किया। सार्वजनीन घोषणा में प्रतिज्ञापित मानवाधिकारों के २ प्रमुख वर्ग, अर्थात नागरिक एवं राजनैतिक अधिकार तथा आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार २ अलग अलग प्रसन्न विधाओ में पल्लवित किये गये। इनमे से एक की आर्थिक, सामाजिक तथा संस्कृतिक अधिकारों से सम्बंधित अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा और दूसरी थी नागरिक तथा राजनैतिक अधिकार-सम्बन्धी प्रसंविदा। इनके अतिरिक्त विज्ञप्तिया (protocol) भी जारी की गई। मानवाधिकारों की सार्वजनीन घोषणा, उपर्युक्त २ प्रसंविदाएं तथा २ विज्ञप्तिय, ये पाँचों मिल कर मानवाधिकारों के अंतरराष्ट्रीय विधेयक (bill) का रूप ले लेती है। ये ऐसे आधारभूत दस्तावेज है जिन पर दुनिया भर में मानवाधिकारों की सुरक्षा और प्रोन्नति निर्भर है।

संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) का महासम्मेलन 14 नवम्बर से 15 दिसम्बर 1960 तक पेरिस में आयोजित अपने ग्यारहवे अधिवेशन में, यह स्मरण करते हुए की मानवाधिकारों की सार्वजनीन घोषणा अभेद के सिद्धांत पर आग्रह करती है और ऐलान करती है कि प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है।

अत्यंत प्राचीन काल से ही व्यक्ति के अधिकारों तथा सामाजिक न्याय की मांग की जाती रही है तथा इस आधार पर तानासहियों का विरोध भी किया जाता रहा है।

पश्चिम में यूनानी तथा रोमन सभ्यताओं के समय से ही समाज तथा चर्च के मध्य संबंधों पर विचार किया जा रहा है तथा आधुनिक समय में मैग्नाकार्टा को इस देश में प्रथम महत्वपूर्ण कदम माना जाता है। मैग्नाकार्टा के बाद जॉन लॉक और जे.एस.मिल. ने मानवाधिकार की बात की तथा 1776 अमेरिकन स्वतंत्रता की घोषणा को इस दिशा में एक और महत्वपूर्ण कदम माना गया। 1789 में फ्रांसिसी क्रांति के " स्वतंत्रता, समानता तथा भातृत्व "के आदर्शों को व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ तो "व्यक्तियों तथा नागरिकों के अधिकरों की घोषणा'' को भी उतना महत्वपूर्ण माना गया।
जहाँ तक पूर्व की सभ्यता का प्रश्न है, भारत को उसका विशिष्ट प्रतिनिधि माना जा सकता है तथा भारत में तो सदैव से ही "वसुधैव कुटुम्बकम" की भावना को महत्वपूर्ण माना जाता रहा है। यही नही हमारी सभ्यता तथा संस्कृति में तो मानव के अतिरिक्त प्रकृति की समस्त शक्तियों का भी उतना ही सम्मान किया जाता रहा है। वर्तमान समय में भारत का संविधान अधिकांश मानव अधिकारों को अपने आपमें समेटे हुए है तथा उपनिवेशी शासन के शोषण से ग्रस्त जनता को राहत प्रदान करते हुए भारत के संविधान निर्माताओं ने उन्हें सभी तरह की स्वतंत्रताएँ तथा अधिकार स्वतः ही प्रदान कर दिए है।

2.8 भारतीय संविधान की भूमिका

प्रासंगिक तौर पर आज मानवाधिकार की अवधारणा पर विचार किया जा रहा है जबकि प्राचीन काल से ही इस विषय पर आवाज उठती आ रही है। प्रत्येक मानव, प्राणी होने के अधिकारों का हकदार है क्योंकि यह अधिकार उसे मानव के रूप में जन्म लेने के अधार पर मिले है। इस पर प्राचीन यूनान में अरस्तु ने अपनी पुस्तक "न्याय के सिद्धांत" में चर्चा की थी।रोम में सिसरो ने 'जुस नेचुरल' का सिद्धांत दिया था। भारत में भी महाभारत जैसे ग्रन्थों में इस विषय पर उल्लेख किया गाया था। मध्यकाल के कैथोलिक धर्म ने इन अधिकारों को अन्य अधिकारों से ऊपर माना। उस काल में न्यायपूर्ण रूप से इन अधिकारों की रक्षा भी की जाती थी। ठीक इसे प्रकार आधुनिक काल में पुनर्जागरण के दौर के बाद प्राक्रतिक न्याय और प्राकृतिक अधिकारों की स्थापना हुई। प्राकृतिक न्याय के अनुसार वे ही अधिकार माने जाने योग्य है, जो तर्क संगती रखते है। मिल्टन ने प्राकृतिक स्वतंत्रता की बात कही तो जॉन लॉक ने सभी लोगों के लिए सामान अधिकारों की बात कही।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है की मानवाधिकार से व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता एवं गरिमा से सम्बंधित ऐसे अधिकार अभिप्रेत है, जो किसी उच्च सत्ता अथवा संविधान द्वारा प्रत्याभूत अथवा अन्तरराष्ट्रीय संविदाओ में सन्निहित है। मानवाधिकारों के सम्बन्ध में भारतीय परंपरा को देखे तो स्पष्ट होता है कि पुरातन समय से हमारे यहाँ मानवाधिकारों के संरक्षण और संवर्धन हेतु सभी प्रकार की आवश्यक व्यवस्थाएं की गई है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा की गई मानवाधिकार की विश्व घोषणा की प्रथम पंक्ति है- "मानव अधिकारों की मान्यता एवं सम्मान संसार में स्वतंत्रता, शक्ति एवं न्याय की स्थापना करना है।" चूँकि मानव परिवार के सभी सदस्यों की जन्मजात गरिमा और सम्मान में अविच्छिन अधिकार की स्वीकृति ही विश्व में शांति, न्याय और स्वमतंत्रता की बुनियाद है।

आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्यों का प्रमुख उद्देश्य राज्य का बहुमुखी विकास करना है।यह तभी संभव है जब की उस राज्य के प्रत्येक नागरिक को ऐसे अधिकारों से संपन्न बनाया जाए ताकि वह स्वतंत्रतापूर्वक एवं निर्बाध रूप से अपने व्यक्तित्व का समुचित विकास कर सके एवं राज्य की प्रगति में सहायक बन सके। इस प्रकार अधिकार राज्य की महती आवश्यकता बन जाते है।
लोस्की का कथन है कि अधिकार किसी भी लोकतान्त्रिक राज्य की आधार शिला है। यह वे गुण है जिनके द्वारा राज्य की शक्ति के प्रयोग ने नैतिकता का समावेश होता है। यह अधिकार प्रकृति है राज्य की शक्ति के प्रयोग में नैतिकता का समावेश होता है। यह अधिकार प्राकृतिक है क्योंकि आदर्श एवं सुखमय जीवन के लिए नितांत आवश्यकता है। स्पष्ट है कि बिना अधिकारों के लोकतंत्र में व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं उसके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की कल्पना नहीं की जा सकती।

1. मानवाधिकारों से सम्बंधित किसी भी विषय में सरकार को सिफारिश, सुझाव एवं सूचना देना।
2. राष्ट्रीय कानूनों एवं प्रथाओं को अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार प्रतिमान के अनुसार विकसित करना।
3. मानव अधिकारों के बारे में जनता को शिक्षित एवं जागरूक बनाना।
4. अंतरराष्ट्रीय उपायों को सूचनात्मक सहयोग देना।
5. संयुक्त राष्ट्र संघ, क्षेत्री संघों एवं राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोगों को उनके कार्य में सहयोग देना।

मानवाधिकार की अवधारणा को सर्वजनीनता समकालीन इतिहास, जिसे वास्तव में समकालीन इतिहास के रूप में देखा जा सकता है के स्वरूप का प्रतिबिम्ब है। इस इतिहास की विशिष्टता है इस जागरूकता का उदय कि मानव जाति के "सभी सदस्य विश्व समुदाय से अनिवार्य रूप से जुड़े हुए है" और यह मान्यता कि विश्व की नियाती में विश्व के सभी मनुष्यों की बराबर की भागीदारी है। इसके लिए मुख्य कारक है: विश्व स्तर पर साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का ढह जाना, आधुनिक युग की

शुरुआत से यूरोप द्वारा पूरे विश्व पर बनाये गए प्रभुत्व का अंत होना, और तीसरी दुनिया के नाम से जाने जाने वाले देशों का एक प्रभावशाली शक्ति के रूप में उदय होना।

2.9 मानवाधिकार आयोग

भारत में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का एक लम्बा इतिहास है। आधुनिक काल में भारत में मानवाधिकारों के लिए संघर्ष आजादी से काफी पहले ही प्रारंभ हो गया था। तत्कालीन समय में कांग्रेस पार्टी ने आम भारतीयों के मानवाधिकारों के लिए काफी संघर्ष किया और इस सम्बन्ध में कई प्रस्ताव सरकारको सौंपे गए। भारत को अंग्रेजो की दासता से मुक्ति मिली तो लोगों ने मानवाधिकारों के लिए कई मांगें सरकार के सामने रख दी तदुपरांत सरकार ने आम जनता के मानवाधिकारों को संरक्षण प्रदान करने के लिए कानून में कई प्रावधान किये। धीरे धीरे मानवाधिकारों की स्थिति सुधरने लगी लेकिन 1975 के आस पास भारत में मानवाधिकरों को गहरा धक्का लगा। सन् 1975 से 1977 तक देश भर में लगे राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान लोगों के मानवाधिकारों का बुरी तरह हनन किया गया।

यदि हम इतिहास के पन्ने पलटें तो पता चलता है कि 1920 के दशक में पंडित नेहरु और उनके सहयोगियों द्वारा नागरिक स्वतंत्रता संघ को गठित किया गया। इस संगठन ने आम लोगों के मानवाधिकारों के लिए संघर्ष किया और लोगों की बात सरकार के सामने रखी। इसके कुछ समय बाद मद्रास में भी ऐसे संगठनो की स्थापना की गई जिसके नागरिकों को स्वतंत्रता संगठन कहा गया तदुपरांत आन्ध्र प्रदेश में आन्ध्र नागरिक स्वतंत्रता समीति की स्थापना की गई। धीरे-धीरे भारत के दूसरे राज्यों में भी मानवाधिकार संगठनों की स्थापना होने लगी। बाद के वर्षों में 1983 में राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग ने सरकार से एक राष्ट्रीय एकाकी मानवाधिकारवादी आयोग की स्थापना करने की सिफारिश की। इस सम्मलेन में यही मांग की गई कि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना जल्द से जल्द की जाए।

2.10 संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना (Estabilishment of U.N.O.)

महायुद्ध काल में एक नवीन अंतरराष्ट्रीय संस्था की स्थापना की दिशा में अनेक कदम उठाये गये जो निम्नलिखित है –

- 14 अगस्त 1941- संयुक्त राज्य अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने एक ऐसी अंतरराष्ट्रीय की संस्था का अनुभव किया जो विश्व के नागरिकों की मूलभूत 4 स्वतंत्रताएँ (भाषा और विचार की स्वतंत्रता, आर्थिक स्वतंत्रता, धर्म की स्वतंत्रता और भय से स्वतंत्रता प्रदान कर सके) प्रदान कर सके। इसके तुरन्त बाद राष्ट्रपति रूजवेल्ट तथा इंग्लैंड के तत्कालीन प्रधानमंत्री

चर्चिल ने संयुक्त घोषणा पत्र निकला जो अटलांटिक घोषणा पत्र (atlantic charter) के नाम से विख्यात है। इस घोषणा पत्र में उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि संसार के प्रत्येक राष्ट्र को आत्मनिर्णय का अधिकार होना चाहिए। प्रत्येक राष्ट्र का ये अधिकार भी मान लिया गया की साम्राज्यवादी देशों की महत्वकांक्षा से उसकी रक्षा होनी चाहिए। उनको आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की उचित सुविधाए प्रधान होनी चाहिए।

- 1 जनवरी 1942-26 राष्ट्रों ने धुरी शक्तियों को पराजित करने और atlantic charter के स्वीकार करने की प्रतिज्ञा की। इस घोषणा में ‘संयुक्त राष्ट्रों’ शब्द का पहली बार प्रयोग हुआ बाद में 21 और राष्ट्रों ने भी घोषणा से सहमति प्रकट की। अंतरराष्ट्रीय संगठन की स्थापना के सम्बन्ध में यह घोषणा की गयी कि विश्व शांति और सुरक्षा बनाये रखने हेतु एक अंतरराष्ट्रीय संगठन की स्थापना की जाये। इस सम्बन्ध में यह निर्णय लिया गया की यह संगठन सभा शांति के इच्छुक राज्यों की संप्रभुता को समान रूप से स्वीकार करने वाले सिद्धांतो पर आधारित हो सभी छोटे-बड़े राष्ट्र समान रूप से इसके सदस्य बन सके और शांति तथा सुरक्षा स्थापित करने के अतिरिक्त युद्धोपरांत शस्त्रों के नियंत्रण के बारे में यह सामान्य समझौता सम्पन्न कराये।
- रूस के प्रतिनिधि एस. बी. क्राईलोब ने लिखा कि मास्को संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्म स्थान बन गया क्योंकि यह मास्को ही था जहाँ पर अंतरराष्ट्रीय संगठन की स्थापना की घोषणा की गयी तथा उस पर हस्ताक्षर किये गये।
- 24 अक्टूबर 1945- चीन, फ्रांस, सोवियत संघ, ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका और बहुत से दुसरे हस्ताक्षरकर्ता, राष्ट्रों ने चार्टर का अनुसमर्थन कर दिया। इस तारीख को संयुक्त राष्ट्र संघ विधिवत रूप से अस्तित्व में आ गया और इसलिए यह दिन (24 अक्टूबर) विश्व में ‘संयुक्त राष्ट्र दिवस’ (united nations day) के रूप में मनाया जाता है।

2.11 सारांश

आधुनिक काल में भारत में मानवाधिकारों के लिए संघर्ष आजादी से काफी पहले ही प्रारंभ हो गया था। तत्कालीन समय में कांग्रेस पार्टी ने आम भारतीयों के मानवाधिकारों के लिए काफी संघर्ष किया और इस सम्बन्ध में कई प्रस्ताव सरकार को सौंपे गए। भारत को अंग्रेजो की दासता से मुक्ति मिली तो लोगों ने मानवाधिकारों के लिए कई मांगें सरकार के सामने रख दी तदुपरांत सरकार ने आम जनता के मानवाधिकारों को संरक्षण प्रदान करने के लिए कानून में कई प्रावधान किये। अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की स्थापना करना और सामूहिक तथा प्रभावपूर्ण प्रयत्नों से आने वाली ख़बरों का उन्नमूलन करना, शांति भंग करने वाली चेष्टाओ को दबाना तथा न्याय और अंतरराष्ट्रीय कानून के सिद्धांतों के आधार पर शांति पूर्ण साधनों से उन अंतरराष्ट्रीय विवादों और

समस्याओ को सुलझना जिससे शांति भंग होने की आशंका हो। सब राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों का विकास करना।

अपनी प्रगति की जाँच करें।

1.मानवाधिकार के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कौन कौन से प्रयास हो रहे हैं?

----

2. मानवाधिकार सम्बन्धी घोषणा पत्र के मुख्य तत्व और विशेषता के बारे में लिखिए।

3. मानवाधिकार के नीतिगत परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में भारतीय संविधान की क्या भूमिका है ?

4. संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना किस उद्देश्य को लेकर की गई है ?

इकाई-3 शांति शिक्षा के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

इकाई की रुपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 शांति शिक्षा का उद्भव एवं विकास-ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में
3.4 स्त्री, दलित एवं शांति शिक्षा
3.5 सांस्कृतिक समन्वय, लोकतांत्रिक मूल्य, धर्मनिरपेक्षतावाद, उत्तरदायी नागरिकता एवं शांति शिक्षा
3.6 शांति शिक्षा की चुनौतियाँ सामुदायिक एवं साम्प्रदायिक संघर्ष
3.7 जीवनशैली के रूप में शांति के लिए शिक्षा
3.8 सारांश
3.9 संदर्भ ग्रंथ

3.1 प्रस्तावना

वास्तव में शांति युद्ध, उपद्रव, दमन, हिंसा, आतंक, शोषण के दामन से उद्भुत हुई है। समाज में घटित बहुत से अनैतिक सामाजिक व्यवहार शांति शिक्षा के कारण हैं। पहले नैतिक शिक्षा, फिर मूल्य शिक्षा और अब शांति शिक्षा पूर्व के सभी शैक्षिक आयाम समेटते हुए पूर्णतः सार्वभौमिक व शाश्वत शिक्षा का प्रतिरूप है। वास्तव में शांति शिक्षा के द्वारा ही संपूर्ण मानव-समुदाय को एकता के सूत्र में बांधा जा सकता है। विश्व शांति कैसे प्राप्त की जा सकती है इसके लिए कई सिद्धांतों का प्रस्ताव किया गया है। स्थायी शांति की स्थापना मानवता के नैतिक और बौद्धिक एकजुटता के आधार पर ही की जा सकती है। केवल राजनीतिक और आर्थिक समझौतों से स्थायी शांति स्थापित नहीं होगी। शांति की स्थापना इस धारणा पर की जानी चाहिए कि पूरी मानवता एक है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप –

1. शांति शिक्षा के बारे में जान सकेंगे।
2. शांति शिक्षा का उद्भव एवं विकास-ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के बारे में जान सकेंगे।
3. स्त्री, दलित एवं शांति शिक्षा के बारे में जान सकेंगे।
4. शांति शिक्षा के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य से अवगत हो सकेंगे।

5. सांस्कृतिक समन्वय, लोकतांत्रिक मूल्य, धर्मनिरपेक्षतावाद, उत्तरदायी नागरिकता एवं शांति शिक्षा के महत्व को जान सकेंगे।
6. शांति शिक्षा की चुनौतियाँ सामुदायिक एवं साम्प्रदायिक संघर्ष के बारे में जान सकेंगे।
7. जीवनशैली के रूप में शांति के लिए शिक्षा को आत्मसात कर सकेंगे।

3.3 शांति शिक्षा का उद्भव एवं विकास-ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यीय में-

अंग्रेंजी शब्दकोष में शांति के लिए पीस शब्द है। पीस लैटिन के पैक्स से निकला है। हेब्रू भाषा में शांति के लिए शलोम तथा हवायी में अलोहा जैसे शब्द प्रयुक्त होते हैं। ये सभी शब्द न्यूनाधिक व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में सौहार्द-इच्छा को विशेष रूप में प्रकट करते हैं। ऐसी इच्छा जिसके अंतर्गत ऐसे वातावरण की अथवा एक ऐसी स्थिति की परिकल्पना की जाती है, जो अव्यवस्था से मुक्त हो जिसमें टकराव न हो, हिंसक संघर्ष न हो। युद्ध, उपद्रव दमन, हिंसा, आतंक, शोषण से रहित अवस्था, अर्थात् मन की वह अवस्था जिसमें वह क्षोभ, दुख आदि से रहित हो जाता है, शांति कहलाता है। मनुष्य जीवन जीने की एक कला है। मनुष्य की एक नैसर्गिक प्रवृत्ति है कि वह सुख व शांतिपूर्वक जीवन जीना चाहता है। ‘‘सुखी एवं शांतिपूर्वक सहज जीवन जीना जीवन की व्यवहारिकता है और इस सफलता के लिए मानवीय साहचर्य और सौहार्द्र की आवश्यकता वैसे ही है जैसे प्यास के लिए पानी की। समरस जीवन और सामाजिक समरसता के लिए करुणा, प्रेम, सद्भाव, मैत्री, सहिष्णुता, त्याग और सामंजस्य के साथ न्यायप्रियता जैसे जीवन-मूल्य का जीवन में प्रवाहित होना अनिवार्य है। इस प्रवाह को प्रेषण देने की क्रिया शांति शिक्षा की व्यवहारिकता है।’’(प्रसाद, 2005)

मानव शांति की समस्या सम्भवतः अनादि काल से चली आ रही एक समस्या है जिसने वर्तमान समय में एक विकराल रूप धारण कर लिया है। भारतीय धर्म ग्रंथों में सम्पूर्ण विश्व, चर व अचर दोनों में शांति कायम करने की विपुल चर्चाएं मिलती हैं। कलिंग विजय के बाद अशोक ने शांति की खोज में बौद्ध धर्म के समक्ष समर्पण कर दिया था। जीसस क्राइस्ट, मोहम्मद साहब, गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, गुरुनानक, संत कबीर, महात्मा गाँधी, मदर टेरेसा जैसे महापुरुषों ने शांति स्थापित करने की दिशा में अथक कार्य किया है। शांति शिक्षा के संदर्भ में ये हमारे प्रेरणास्रोत एवं पथप्रदर्शक हैं।

एक ही शताब्दी में हुए दो विश्व युद्धों में व्यापक नर संहार व बर्बादी को लोग अभी नहीं भूले हैं हिरोशिमा व नागाशाकी पर हुए परमाणु हमले के चिह्न आज भी मौजूद हैं विश्व के लगभग सभी राष्ट्रों में अशांति, हिंसा, आतंकवाद, विद्वेष आदि की प्रवृत्तियाँ दैनंदिन बढ़ती जा रही है। कभी कभी ऐसा लगता है कि विश्व बारूद के ढ़ेर के साथ तृतीय विश्व युद्ध के कगार पर खड़ा है एवं गलत कदम की कोई एक चिंगारी इस बारूद को सुलगाकर मानव जाति को कब नष्ट कर देगी, यह सदैव

सशंकित बना रहता है। पड़ोसी देश पाकिस्तान द्वारा जिस तरह आतंकवाद को पोषण दिया जा रहा है उससे पूरी मानवता अशांति के घेरे में कैद है। विनाशकारी हथियारों का जखीरा, धार्मिक/मजहबी, व जातिगत उन्माद, आर्थिक व सामाजिक विषमताएं तथा अधिनायकवादी दृष्टिकोण आदि शांति स्थापित करने के मार्ग में बाधाएं बनकर खड़ी हुई हैं। आज संपूर्ण विश्व को सभी धर्मों के सार-संदेश के रूप में मानव सहिष्णुता व सद्भाव की सख्त आवश्यकता है। सभी नागरिकों को स्वामी विवेकानंद, टैगोर, बुद्ध, अरविन्द एवं दलाईलामा के शांति संदेश, कबीर के जातिगत समभाव, तुलसी के मंगलकामना, नानक के प्रेमभाव, गाँधी की अहिंसा व सत्याग्रह, तथा टेरेसा की सेवाभावना को मन, वचन व कर्म से अपने-अपने आचरण में उतारने की आवश्यकता है।

वास्तव में शांति युद्ध, उपद्रव, दमन, हिंसा, आतंक, शोषण के दामन से उद्बुद्ध हुई है। समाज में घटित बहुत से अनैतिक सामाजिक व्यवहार शांति शिक्षा के कारण हैं। पहले नैतिक शिक्षा, फिर मूल्य शिक्षा और अब शांति शिक्षा पूर्व के सभी शैक्षिक आयाम समेटते हुए पूर्णतः सार्वभौमिक व शाश्वत शिक्षा का प्रतिरूप है। वास्तव में शांति शिक्षा के द्वारा ही संपूर्ण मानव-समुदाय को एकता के सूत्र में बांधा जा सकता है। ''आज समाज व राजनीति के अतिरिक्त शिक्षा के मदिरों में भी हिंसा की घटनाएं व्यापक रूप से हो रही हैं। संपूर्ण विश्व में विद्यालय व विश्वविद्यालय परिसर और परिसर के बाहर प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष, शारीरिक एवं मानसिक तथा संरचनात्मक हिंसा ने शांति शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व को बल दिया है। क्यों कि शांति शिक्षा हिंसा की समस्याओं के निराकरण में समर्थ है और शांति की व्यावहारिकता बनाए रखने में सक्षम है'' (प्रसाद, 2005).

पूरी विद्यालयी शिक्षा में एक परिदृश्य के तौर पर शांति का सरोकार अंतर्निहित हो, ऐसा सोचने-विचारने का समय अब आ गया है। डेनियल वेब्स्टर ने बताया है कि शिक्षा का मकसद ज्ञान का प्रसार भर नहीं है। ''ज्ञान में वह सब कुछ समाहित नहीं है, जो शिक्षा का व्यापक अर्थ अपने में समाए हुए है। भावनाए! अनुशासित हों, मनोभाव संतुलित और हितकारी लक्ष्यों को प्रोत्साहित किया जाए और किसी भी प्रकार की परिस्थिति में नैतिकता कायम रखी जाए।'' शांति के लिए शिक्षा शांति-शिक्षा से भिन्न है। शांति-शिक्षा में शांति की स्थिति पाठ्यचर्या में शामिल एक विषय की तरह है। दूसरी ओर, शांति के लिए शिक्षा में हम शांति की बात जिस रूप में कर रहे हैं, उस रूप में वह शिक्षा को गढ़ने-संवारने वाली दृष्टि बन कर उभरती है। यह शिक्षा के आदान-प्रदान की प्रक्रिया में आनेवाले एक युगांतकारी बदलाव का संकेतक है। मौजूदा समय में शिक्षा का उद्यम बाजार की शक्तियों से नियंत्रित है। शांति के लिए शिक्षा को बाजार से कोई परहेज नहीं, लेकिन यह बाजार को शिक्षा के उद्देश्य के रूप में नहीं देखती। बाजार हमारे जीवन-संसार का एक हिस्सा भर है। शांति के लिए शिक्षा जीवन के लिए शिक्षा है, और वह जीविका के लिए प्रशिक्षण मात्र नहीं है। उसका मकसद है, लोगों को ऐसे मूल्यों, कौशलों और अभिवृत्तियों से लैस करना, जिनसे उन्हें दूसरों के साथ सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार रखनेवाले पूर्ण व्यक्ति और उत्तरदायी नागरिक बनने में मदद मिले। ऐतिहासिक रूप से नैतिक

शिक्षा और मूल्य शिक्षा शांति के लिए शिक्षा के पूर्वज हैं। इनमें काफी कुछ एक-सा है। विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूप रेखा (एन. सी. एफ.2000.) के मुताबिक, मनुष्य मूल्य-सृजन का एक स्रोत है। मूल्य और अभिवृत्तियाँ शांति की संस्कृति का निर्माण करने वाली भवन सामग्री की तरह हैं। तो फिर शांति के लिए शिक्षा की अपनी क्या विशिष्टता है। हम आख़िर क्यों एक नए दृष्टिकोण का बोझ उठाकर स्वयं को परेशान करें या विद्यार्थियों की कमर दुहरी करें? शांति के लिए शिक्षा पढ़ाई के भार में ख़ासी कमी लाने की बात करती है, ना कि उसे बढ़ाने की शांति जीने के आनंद को मूर्त रूप प्रदान करती है। शांति के दृष्टिकोण से देखें तो सीखना एक आनंददायक अनुभव होना चाहिए। आनंद ही जीवन का सार है। शांति के लिए शिक्षा में मूल्य-शिक्षा भी समाहित है, लेकिन दोनों एक ही नहीं हैं शांति मूल्यों की संगति के लिए प्रासंगिक तौर पर उपयुक्त और लाभदायक शिक्षाशास्त्राय बिंदु है। शांति मूल्यों के उद्देश्यों को ठोस रूप देती है और उनके आंतरीकरण को प्रेरित करती है। इस तरह के ढाँचे के अभाव में अधिगम प्राप्ति में मूल्यों का समावेश हो ही नहीं पाता। इस तरह शांति के लिए शिक्षित करना मूल्य-शिक्षा को संदर्भ प्रदान करने और संचालित करने की आदर्श रणनीति है। मूल्यों का आंतरीकरण अनुभव के जरिए होता है, जिसका कक्षा-केंद्रित शिक्षण और शिक्षण के पूर्णतया संज्ञानात्मक उपागम में अभाव पाया जाता है। शांति के लिए शिक्षा सीखने की प्रक्रिया को क्लासरूम की सीमा से मुक्त करने और इसे खोज के आनंद से अनुप्राणित जागरूकता के उत्सव में बदलने की मांग करती है।

विश्व परेशानियों से मुक्त नहीं है। पश्चिम एशिया में क्या हो रहा है। दुनिया के विभिन्न भागों में क्या हो रहा है। आतंकवाद के मुद्दे पर विचारों में विभेद चाहे जो भी हो मुझे विश्वास है कि इस बात से सभी सहमत होंगे कि आतंकवाद किसी भी धर्म का सम्मान नहीं करता है। यह न तो किसी शांति व्यवस्था का सम्मान करता है न ही किसी राष्ट्रीयता का। यह और कुछ नहीं बल्कि प्रचंड विनाश में विश्वास रखता है। इसलिए पश्चिम एशिया में या एशिया के कुछ अन्य भागों में या अफ्रीका में या लैटिन अमेरिका में असंतुष्ट स्थिति में जो हो रहा है इस सबसे बड़े खतरे का सामना अंतरराष्ट्रीय समुदाय को ही करना है। मैं कहूंगा किसी एक देश या क्षेत्र को नहीं बल्कि पूरी सभ्यता को इसका खमियाजा भुगतना होगा। इस अश्रव्यद्ध से मानवीय मूल्यों का अस्तित्व शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व, सहिष्णुता, बहुलवाद के प्रति सम्मान बहुत खतरे में है। मुझे नहीं मालूम कि आप में से कितने यह जानते हैं कि यह महान कूटनीतिज्ञ विशाल आध्यात्मिक ज्ञान से भी परिपूर्ण था। संयुक्त राष्ट्र में उसकी विरासत में से एक रूम ऑफ क्वाइट का निर्माण है जो आज भी मौजूद है। डेग हैमरस्कॉल्ड जानते थे कि बाहर शांति खोजने की दिशा में पहला कदम अपने भीतर इसे खोजना है। वह जानते थे कि योग और ध्यान इस खोज की महत्वपूर्ण शर्तें हैं।

यूनेस्को का संविधान निम्नलिखित शब्दों के साथ शुरू होता है-

"चूंकि युद्ध व्यक्ति के मन में शुरू होता है इसलिए शांति के दुर्ग व्यक्ति के मन में बनाए जाने चाहिए।"

मानव जाति के इतिहास में एकदूसरे के तौरतरीकों और जीवन के बारे में अज्ञानता दुनिया भर के लोगों के बीच संदेह और अविश्वास का सामान्य कारण है जिनके विभेदों ने प्राय: युद्ध का रूप ले लिया है।

ये शब्द आज भी उतने ही सच लगते हैं जितने 1945 में यूनेस्को की स्थापना के समय लगते थे।स्थायी शांति की स्थापना मानवता के नैतिक और बौद्धिक एकजुटता के आधार पर ही की जा सकती है। केवल राजनीतिक और आर्थिक समझौतों से स्थायी शांति स्थापित नहीं होगी। शांति की स्थापना इस धारणा पर की जानी चाहिए कि पूरी मानवता एक है और टैगोर के शब्दों में हां दुनिया संकीर्ण घरेलू दीवारों से टुकड़ों में नहीं बंटी है।

विश्व शांति सभी देशों और लोगों के बीच और उनके भीतर स्वतंत्रता शांति और खुशी का एक आदर्श है। विश्व शांति पूरी पृथ्वी में अहिंसा स्थापित करने का एक विचार हैए जिसके तहत देश या तो स्वेच्छा से या शासन की एक प्रणाली के जरिये इच्छा से सहयोग करते हैं। ताकि युद्ध को रोका जा सके हालांकि कभी-कभी इस शब्द का प्रयोग विश्व शांति के लिए सभी व्यक्तियों के बीच सभी तरह की दुश्मनी के खात्मे के सन्दर्भ में किया जाता है। संभावना जबकि विश्व शांति सैद्धांतिक रूप से संभव है कुछ का मानना है कि मानव प्रकृति स्वाभाविक तौर पर इसे रोकती है। यह विश्वास इस विचार से उपजा है कि मनुष्य प्राकृतिक रूप से हिंसक है या कुछ परिस्थितियों में तर्कसंगत कारक हिंसक कार्य करने के लिए प्रेरित करेंगे तथापि दूसरों का मानना है कि युद्ध मानव प्रकृति का एक सहज भाग नहीं हैं और यह मिथक वास्तव में लोगों को विश्व शांति के लिए प्रेरित होने से रोकता है। विश्व शांति के सिद्धांत विश्व शांति कैसे प्राप्त की जा सकती है इसके लिए कई सिद्धांतों का प्रस्ताव किया गया है। इनमें से कई नीचे सूचीबद्ध हैं। विश्व शांति हासिल की जा सकती है। जब संसाधनों को लेकर संघर्ष नहीं हो उदाहरण के लिए तेल एक ऐसा ही संसाधन है और तेल की आपूर्ति को लेकर संघर्ष जाना पहचाना है। इसलिए पुन: प्रयोज्य ईंधन स्रोत का उपयोग करने वाली प्रौद्योगिकी विकसित करना विश्व शांति हासिल करने का एक तरीका हो सकता है। लोकतांत्रिक शांति सिद्धांत विवादास्पद डेमोक्रेटिक शांति सिद्धांत के समर्थकों का दावा है कि इस बात के मजबूत अनुभव जन्य साक्ष्य मौजूद हैं कि लोकतांत्रिक देश कभी नहीं या मुश्किल से ही एक-दूसरे के खिलाफ युद्ध छेड़ते हैं। अंतरराष्ट्रीय संबंधों में हमें एक व्यवहारिक कानून की आवश्यकता है। औद्योगिक क्रांति के बाद से लोकतांत्रिक बनने वाले देशों में वृद्धि हो रही है। एक विश्व शांति इस प्रकार संभव है। अगर यह रुझान जारी रहे और अगर लोकतांत्रिक शांति सिद्धांत सही हो हालांकि इस सिद्धांत के कई संभव अपवाद है। पूंजीवादी शांति सिद्धांत अपनी 'पिटलिज्म पीस थोर' पुस्तक में आयन रैंड मानती है कि इतिहास के बड़े युद्ध उस समय के अपेक्षाकृत अधिक नियंत्रित अर्थव्यवस्थाओं वाले देशों द्वारा मुक्त अर्थव्यवस्थाओं के खिलाफ लड़े गये और उस पूंजीवाद ने मानव जाति को इतिहास में सबसे लंबे समय तक शांति प्रदान की और जिस अवधि में पूरी सभ्य दुनिया की भागीदारी में 1815 में

नेपोलियन युद्ध के अंत से 1914 में प्रथम विश्व युद्ध के छिड़ने तक युद्ध नहीं हुए यह याद रखा जाना चाहिए कि उन्नीसवीं सदी की राजनीतिक प्रणालियां शुद्ध पूंजीवादी नहीं थीं। बल्कि मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं वाली थीं। हालांकि पूंजीवाद के तत्व का प्रभुत्व था पर यह पूंजीवाद की एक सदी के उतने ही करीब था जितना मानव जाति के आने तक था। लेकिन पूरी उन्नीसवीं सदी के दौरान राज्यवाद के तत्व फलते फूलते रहे और.1914 में पूरी दुनिया में इसके विस्फोट के समय तक शामिल सरकारों पर राज्यवाद की नीतियों का बोलबाला रहा। हालांकि इस सिद्धांत ने यूरोप के बाहर के देशों साथ ही साथ एकीकरण के लिए जर्मनी और इटली में हुए युद्धों फ्रांकोपर्सियन युद्ध और यूरोप के अन्य संघर्षों के खिलाफ पश्चिमी देशों द्वारा छेड़े गये क्रूर औपनिवेशिक युद्धों की अनदेखी की यह युद्ध के अभाव को शांति के पैमाने के रूप में पेश करता है। जब वास्तविक रूप में वर्ग संघर्ष मौजूद रहा।

अहिंसा

अहिंसा का सामान्य अर्थ है हिंसा न करना। इसका व्यापक अर्थ है किसी भी प्राणी को तन मन कर्म वचन और वाणी से कोई नुकसान न पहुँचाना। मन में किसी का अहित न सोचना किसी को कटुवाणी आदि के द्वारा भी नुकसान न देना तथा कर्म से भी किसी भी अवस्था में किसी भी प्राणी कि हिंसा न करना ही अहिंसा है। हिन्दू धर्म में अहिंसा का बहुत महत्त्व है। 'अहिंसा परमो धर्म:' अहिंसा को परम अर्थात सबसे बड़ा धर्म कहा गया है। आधुनिक काल में महात्मा गांधी ने भारत की आजादी के लिये जो आन्दोलन चलाया वह काफी सीमा तक अहिंसात्मक था।

मानव जाति के नियम

मैं स्वप्नद्रष्टा नहीं हूं। मैं स्वयं को एक व्यावहारिक आदर्शवादी मानता हूं। अहिंसा का धर्म केवल ऋषियों और संतों के लिए नहीं है। यह सामान्य लोगों के लिए भी है। अहिंसा उसी प्रकार से मानवों का नियम है जिस प्रकार से हिंसा पशुओं का नियम है। पशु की आत्मा सुप्तावस्था में होती है और वह केवल शारीरिक शक्ति के नियम को ही जानता है। मानव की गरिमा एक उच्चतर नियम आत्मा के बल का नियम के पालन की अपेक्षा करती है। जिन ऋषियों ने हिंसा के बीच अहिंसा की खोज की वे न्यूटन से अधिक प्रतिभाशाली थे। वे स्वयं वेलिंग्टन से भी बडे योद्धा थे। शस्त्रों के प्रयोग का ज्ञान होने पर भी उन्होंने उसकी व्यर्थता को पहचाना और श्रांत संसार को बताया कि उसकी मुक्ति हिंसा में नहीं अपितु अहिंसा में है। हरि ओम शास्त्री साधारण अर्थ में अहिंसा का तात्पर्य हिंसा न करने से लगाया जाता है परंतु अहिंसा तो एक नकारात्मक शब्द हुआ। उसे विलोम शब्द भी कह सकते हैं। अहिंसा का वास्तविक अर्थ है निडर होना। मानव का निडर अभय होना उसका सबसे बड़ा गुण है। ऋग्वेद की एक सूक्ति में आता है हे प्रभु! आप हमें अभय प्रदान करें। निडर व्यक्ति ही स्वतंत्र हो सकता है। जिसके पैरों में जंजीर बंधी हुई है वह स्वतंत्र कैसे हो सकता है और जो स्वतंत्र नहीं है वह निडर नहीं हो सकता। परतंत्र और भयभीत व्यक्ति अहिंसा का पालन नहीं कर सकता। अहिंसा वीर पुरुष की

शोभा है। अहिंसा कायर पुरुष से दूर-दूर भागती है। विश्व के मजहबों में मत-मतांतर होने पर भी अहिंसा पर सभी एकमत हैं। इसलिए अहिंसा को बहुत ही विचार एवं विवेक से समझ लेने की आवश्यकता है।

अहिंसा का सर्वप्रथम उद्घोष भगवान बुद्ध ने अपने उपदेशों में किया था। भगवान बुद्ध के उपदेशों का असर यह हुआ कि उस समय यज्ञों के दौरान जो पशु हिंसा होती थी। वह समाप्त हो गई। परंतु कालांतर में अहिंसा का ठीक प्रकार से अर्थ न समझ सकने के कारण परिणाम यह हुआ कि भारत पर अनेक आक्रमण हुए और यह गुलाम हो गया। भगवान बुद्ध के बाद दूसरे थे महावीर स्वामी जिनका अहिंसा के मत पर बहुत प्रभाव रहा। जैन धर्म की परंपरा में तो शरीर पर कपड़े पहनना भी हिंसा माना जाता है परंतु महावीर स्वामी के पश्चात भी अहिंसा का प्रभाव अपने सही रूप में लागू नहीं हो सका। जैन धर्म में यम के ये पांचों सूत्र आक्रांत हो गए हैं -अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।इस कथन का अर्थ इस घटना से समझा जा सकता है। एक बार भगवान बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को उपदेश देते हुए कहा कि भिक्षा पात्र में जो कुछ प्राप्त हो जाए वही ग्रहण कर लेना चाहिए। दैवयोग से एक दिन एक भिक्षु के पात्र में चील ने एक मांस का टुकड़ा डाल दिया। इस पर भिक्षु ने भगवान बुद्ध से पूछा तो भगवान बुद्ध ने सामान्य भाव से कह दिया कि इसे ग्रहण कर लीजिए। परंतु इस का परिणाम भविष्य में यह हुआ कि लोग भगवान बुद्ध के उस वाक्य को पकड़कर मांसाहार करने लगे। आज चीन, मंगोलिया, श्रीलंका, जावा तथा भारत के कुछ भागों में जहां बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार है लोग मांसाहार करते हैं। अहिंसा के विषय में भी ठीक यही स्थिति है।

पश्चिमी जगत में करुणा और प्रेम का संदेश देने वाले यीशु अहिंसा के अग्रदूत माने जाते हैं परंतु अहिंसा के सिद्धांत का प्रतिपादन करने वाले भगवान यीशु का परिणाम अत्यंत दुखद रहा। अंत में उन्हें सूली पर लटकाया गया और उनके विरोधियों ने उन्हें कायर करार दिया। इससे स्पष्ट परिलक्षित होता है कि भगवान यीशु के अनुयायियों ने अहिंसा के मूल अर्थ को ठीक प्रकार से नहीं समझा।

भारतीय चिंतन में हमें अहिंसा का समीचीन अर्थ जानना होगा। महाभारत युद्ध के आरंभ में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को युद्ध हेतु प्रेरित करने के लिए उपदेश देते हैं। भगवान श्रीकृष्ण की दृष्टि में अहिंसा का अर्थ है जिस पुरुष के अन्त:करण में 'मैं कर्ता हूं' ऐसा भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि सांसारिक पदार्थ और कर्म में लिप्त नहीं होती है वह पुरुष सब लोगों को मारकर भी वास्तव में न तो मारता है और न ही पाप से बंधता है। मानसकार कहते हैं कि आततायियों को दंड देने के लिए जिनके हाथ में धनुष और बाण हैं ऐसे प्रभु श्री राम की वंदना करता हूं। भगवान यज्ञ की रक्षा करने के लिए ताड़का को मारना भी उचित समझते हैं। भक्तों की रक्षा के लिए मेघनाद के यज्ञ के विध्वंस का आदेश देते हैं। योग की संस्कृति को स्थापित करने के लिए लाखों राक्षसों के संहार को भी उचित मानते हैं। यह है अहिंसा का यथार्थ स्वरूप इसलिए मानसकार ने लिखा है।

परम धरम श्रुति विदित अहिंसा। पर निंदा सम अध न गरीसा।। वेदों में अहिंसा को परम धर्म माना गया है और यह परनिंदा के समान भारी पाप नहीं है।

विश्व शांति के सिद्धांत

विश्व शांति कैसे प्राप्त की जा सकती है इसके लिए कई सिद्धांतों का प्रस्ताव किया गया है। इनमें से कई नीचे सूचीबद्ध हैं। विश्व शांति हासिल की जा सकती है जब संसाधनों को लेकर संघर्ष नहीं हो उदाहरण के लिए तेल एक ऐसा ही संसाधन है और तेल की आपूर्ति को लेकर संघर्ष जाना पहचाना है। इसलिए पुन: प्रयोज्य ईंधन स्रोत का उपयोग करने वाली प्रौद्योगिकी विकसित करना विश्व शांति हासिल करने का एक तरीका हो सकता है।

विभिन्न राजनीतिक विचारधाराएं

दावा किया जाता है कि कभी-कभी विश्व शांति किसी खास राजनीतिक विचारधारा का एक अपरिहार्य परिणाम होती है। पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज डब्ल्यू बुश के मुताबिक लोकतंत्र का प्रयाण मार्च विश्व शांति का नेतृत्व करेगा एक मार्क्सवादी विचारक लियोन त्रोत्स्की का मानना है कि विश्व क्रांति कम्युनिस्ट विश्व शांति का नेतृत्व करेगी।

लोकतांत्रिक शांति सिद्धांत

विवादास्पद डेमोक्रेटिक शांति सिद्धांत के समर्थकों का दावा है कि इस बात के मजबूत अनुभव जन्य साक्ष्य मौजूद हैं कि लोकतांत्रिक देश कभी नहीं या मुश्किल से ही एक-दूसरे के खिलाफ युद्ध छेड़ते हैं। केवल अपवाद हैं कोड युद्ध, टर्बोट युद्ध और ऑपरेशन फोर्क जैक लेवी (1988) बार-बार जोर दे कर यह सिद्धांत बताते हैं कि चाहे कुछ भी हो अंतरराष्ट्रीय संबंधों में हमें एक व्यवहारिक कानून की आवश्यकता है।

औद्योगिक क्रांति के बाद से लोकतांत्रिक बनने वाले देशों में वृद्धि हो रही है। एक विश्व शांति इस प्रकार संभव है। अगर यह रुझान जारी रहे और अगर लोकतांत्रिक शांति सिद्धांत सही हो हालांकि इस सिद्धांत के कई संभव अपवाद है।

पूंजीवादी शांति सिद्धांत

अपनी 'कैपिटलिज्म पीस थ्योरी' पुस्तक में आयन रैंड मानती है कि इतिहास के बड़े युद्ध उस समय के अपेक्षाकृत अधिक नियंत्रित अर्थव्यवस्थाओं वाले देशों द्वारा मुक्त अर्थव्यवस्थाओं के खिलाफ लड़े गये और उस पूंजीवाद ने मानव जाति को इतिहास में सबसे लंबे समय तक शांति प्रदान की और जिस अवधि में पूरी सभ्य दुनिया की भागीदारी में 1815 में नेपोलियन युद्ध के अंत से 1914 में प्रथम विश्व युद्ध के छिड़ने तक युद्ध नहीं हुए। यह याद रखा जाना चाहिए कि उन्नीसवीं सदी की राजनीतिक प्रणालियां शुद्ध पूंजीवादी नहीं थीं बल्कि मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं वाली थीं। हालांकि पूंजीवाद के तत्व का प्रभुत्व था पर यह पूंजीवाद की एक सदी के उतने ही करीब था। जितना मानव जाति के

आने तक था। लेकिन पूरी उन्नीसवीं सदी के दौरान राज्यवाद के तत्व फलते-फूलते रहे और 1914 में पूरी दुनिया में इसके विस्फोट के समय तक शामिल सरकारों पर राज्यवाद की नीतियों का बोलबाला रहा।

हालांकि इस सिद्धांत ने यूरोप के बाहर के देशों साथ ही साथ एकीकरण के लिए जर्मनी और इटली में हुए युद्धों फ्रांकोपर्सियन युद्ध और यूरोप के अन्य संघर्षों के खिलाफ पश्चिमी देशों द्वारा छेड़े गये क्रूर औपनिवेशिक युद्धों की अनदेखी की यह युद्ध के अभाव को शांति के पैमाने के रूप में पेश करता है जब वास्तविक रूप में वर्ग संघर्ष मौजूद रहा।

वैश्वीकरण

कुछ लोग राष्ट्रीय राजनीति में एक प्रवृत्ति देखते हैं जिसके तहत नगर राज्य और राष्ट्र राज्य एकीकृत हो गये और सुझाव दिया कि अंतरराष्ट्रीय मंच इसका पालन करेगा चीन इटली संयुक्त राज्य अमेरिका जर्मनी भारत और ब्रिटेन जैसे कई देश एकीकृत हो गये जबकि यूरोपीय यूनियन ने बाद में इसका अनुपालन किया और इससे संकेत मिलता है कि और अधिक भूमंडलीकरण एक एकीकृत विश्व व्यवस्था बनाने में मदद करेगा।

पृथकतावाद और गैरहस्तक्षेपवाद

पृथकतावाद और गैरहस्तक्षेपवाद के समर्थकों का दावा है कि कई राष्ट्रों से बनी एक दुनिया उस समय तक शांतिपूर्वक सहअस्तित्व के साथ रह सकती है जब तक वह घरेलू मामलों की तरफ मजबूती से ध्यान केंद्रित रखे और दूसरे देशों पर अपनी इच्छा थोपने की कोशिश नहीं करे। गैरहस्तक्षेपवाद के संबंध में पृथकतावाद को लेकर भ्रमित नहीं होना चाहिए। गैरहस्तक्षेपवाद की तरह पृथकतावाद दूसरे राष्ट्रों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप से बचने की सलाह देता है लेकिन संरक्षणवाद और अंतरराष्ट्रीय व्यापार और पर्यटन पर प्रतिबंध पर जोर देता है। दूसरी तरफ गैरहस्तक्षेपवाद मुक्त व्यापार कोब्डेनिज्म की तरह के राजनीतिक व सैन्य हस्तक्षेप के संयोजन की वकालत करता है। जापान जैसे राष्ट्र शायद अतीत में पृथकतावादी नीतियों की स्थापना के लिए सबसे ज्यादा जाने जाते हैं। जापानी ईदो तोकुगावा ने एक पृथकतावादी अवधि ईदो अवधि शुरू कीए जिसके तहत जापान ने पूरी दुनिया से अपने को अलग कर दिया यह एक प्रसिद्ध अलगाव अवधि थी और कई क्षेत्रों में अच्छी तरह प्रलेखित की गई।

स्वसंगठित शांति

विश्व शांति को स्थानीय स्वनिर्धारित व्यवहार के एक परिणाम के रूप में दर्शायागया है जो शक्ति के संस्थानीकरण को रोकता है और हिंसा को बढ़ावा देता है। समाधान बहुत कुछ सहमति वाले एजेंडे या उच्च प्राधिकार चाहें वह दैवीय हो या राजनीतिकए में निवेश पर उतना आधारित नहीं हैए जितना आपसी सहमित वाले तंत्रों का स्वसंगठित नेटवर्क जिसका परिणाम एक व्यवहार्य राजनीतिक आर्थिक सामाजिक तानेबाने के रूप में निकलता है। अभिसरण के उत्प्रेरण के लिए प्रमुख तकनीक

विचारों का प्रयोग है जिसे बैककास्टिंग कहते है और इससे कोई भागीदारी में सक्षम हो सकता है भले ही वह किसी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि धार्मिक सिद्धांत राजनीतिक संबद्धता या जनसांख्यिकीय उम्र का हो। समान सहयोगी तंत्र विकिपीडिया सहित खुली स्रोत वाली परियोजनाओं के आसपास इंटरनेट के जरिये उभर रहे हैं और सामाजिक मीडिया का विकास हो रहा है।

आर्थिक मानदंडों का सिद्धांत

आर्थिक मानदंडों का सिद्धांत आर्थिक स्थितियों को प्रशासन के संस्थानों और संघर्ष से संबद्ध करता है व्यक्तिगत ग्राहकवर्गीय अर्थव्यवस्थाओं को अवैयक्तिक बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्थाओ से अलग करता है और बाद वाली अर्थव्यवस्थाओं को राष्ट्रों के भीतर और उनके बीच स्थायी शांति की पहचान देता है।

हालांकि मानव इतिहास के ज्यादातर समाज व्यक्तिगत संबंधों पर आधारित है। समूहों के व्यक्ति एक दूसरे को जानते हैं और और पक्ष का विनिमय करते हैं। आज समूहों के कम आय वाले समाज पदानुक्रम समूह के नेताओं के बीच व्यक्तिगत संबंधों के आधार पर धन वितरित करते हैं। जो अक्सर ग्राहकवर्गवाद और भ्रष्टाचार के साथ जुड़ी हुई एक प्रक्रिया मानी जाती है। माइकल मोउसेयू का तर्क है कि इस प्रकार की सामाजिक अर्थव्यवस्था में संघर्ष हमेशा से मौजूद रहा है भले ही वह प्रच्छन्न या खुला रहा हो क्योंकि व्यक्ति शारीरिक और आर्थिक सुरक्षा के लिए अपने समूहों पर निर्भर रहते हैं और इस तरह अपने राज्यों के बजाय अपने समूहों के प्रति वफादार रहते है और क्योंकि समूह राज्य के खजाने तक पहुंच के लिए सतत संघर्ष की स्थिति में होते हैं। आबद्ध समझदारी की प्रक्रियाओं के माध्यम से लोग मजबूत सामूहिक पहचान के प्रति अभ्यस्त होते हैं और बाहरी ताकतों के डर व मनोवैज्ञानिक पूर्वानुकूलता के कारण उसी दिशा में बह जाते हैं। जिससे सांप्रदायिक हिंसाए नरसंहार और आतंकवाद संभव हो पाता है।

बाजारोन्मुख सामाजिक अर्थव्यवस्थाएं व्यक्तिगत संबंधों से नहीं बाजार के अवैयक्तिक बल से एकीकृत होती है जहां ज्यादातर व्यक्ति राज्य द्वारा लागू अनुबंधों के तहत अजनबियों पर विश्वास करने के लिए आर्थिक रूप से निर्भर होते हैं। यह राज्य के प्रति वफादारी पैदा करती हैए जो कानून का शासन और अनुबंध निष्पक्ष और विश्वस्त रूप से लागू करती है और अनुबंध करने की स्वतंत्रता में समान संरक्षण प्रदान करती है जिसे उदारवादी लोकतंत्र कहा जाता है। युद्ध बाजार एकीकृत अर्थव्यवस्थाओं वाले देशों के भीतर और उनके बीच नहीं हो सकते क्योंकि युद्ध में एक-दूसरे को नुकसान पहुंचाने की आवश्यकता होती है और इस तरह की अर्थव्यवस्थाओं में हर कोई तभी आर्थिक रूप से बेहतर रह सकता है जब बाजार में दूसरे भी बेहतर रहें बदतर नहीं लड़ने के बजाय बाजारोन्मुख सामाजिक अर्थव्यवस्थाओं में नागरिक हर किसी के अधिकारों और कल्याण के बारे में गहरी चिंता करते हैं इसलिए वे घर में आर्थिक विकास और विदेश में आर्थिक सहयोग और

मानवाधिकारों की मांग करते हैं। वास्तव में बाजारोन्मुख सामाजिक अर्थव्यवस्थाओं वाले देशों में वैश्विक मुद्दों पर सहमति होती है और उन दोनों के बीच किसी विवाद में एक भी मौत नहीं हुई है। आर्थिक मानदंडों के सिद्धांत को शास्त्रीय उदार सिद्धांत के रूप में भ्रमित नहीं होने देना चाहिए बाद वाला मानता है कि बाजार प्राकृतिक होते हैं और मुक्त बाजार धन को बढ़ावा देता है। इसके विपरीत आर्थिक मानदंडों का सिद्धांत बताता है कि कैसे बाजार-अनुबंध एक गहन अध्ययन वाला तरीका है और राज्य का खर्च विनियमन और पुनर्वितरण यह सुनिश्चित करने के लिए जरूरी है कि हर कोई सामाजिक बाजार अर्थव्यवस्था में भागीदारी कर सके जो हर किसी के हित में है।

विश्व शांति के धार्मिक विचार

कई धर्मों और धार्मिक नेताओं हिंसा खत्म करने और विश्व शांति की इच्छा व्यक्त की है।

बहाई धर्म

विश्व शांति के लक्ष्य के विशिष्ट संबंध में बहाई विश्वास के बहाउल्ला ने स्थाई शांति की स्थापना के लिए पूरी दुनिया की ओर से समर्थित सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था का सुझाव देता है। यूनिवर्सल हाउस ऑफ जस्टिश ले द प्रोमिज ऑफ वर्ल्ड पीस में इस प्रक्रिया के बारे में लिखा है। ऐसा करीबन हर धर्म मे कहा गया है।

बौद्ध धर्म

कई बौद्ध धर्मावलंबी मानते हैं कि विश्व शांति तभी हो सकती है जब हम अपने मन के भीतर पहले शांति स्थापित करें बौद्ध धर्म के संस्थापक सिद्धार्थ गौतम ने कहा शांति भीतर से आती है। इसे इसके बिना न तलाशें विचार यह है कि गुस्सा और मन की अन्य नकारात्मक अवस्थाएं युद्ध और लड़ाई के कारण हैं। बौद्धों का विश्वास है कि लोग केवल तभी शांति और सद्भाव के साथ जी सकते हैं। जब हम अपने मन से क्रोध जैसी नकारात्मक भावनाओं को त्याग दें और प्यार और करुणा जैसी सकारात्मक भावनाएं पैदा करें।

ईसाई धर्म

बुनियादी ईसाई आदर्श सद्भाव और विश्वास को दूसरों से साझा करने के जरिये शांति को बढ़ावा देता है साथ ही साथ उन्हें भी माफ कर देने जो शांति भंग करने की कोशिश करते हैं। नीचे दो चुने हुए उपदेश दिये जा रहे हैं लेकिन मैं तुम्हें कहता हूं अपने दुश्मनों से प्यार करो जो तुम्हें शाप देते हैं उन्हें आशीर्वाद दो उनका भला करो जो तुमसे नफरत करते हैं और उनके लिए प्रार्थना करो जो तुमसे द्वेषपूर्ण सलूक करते हैं और उत्पीड़न करते हैं। क्योंकि वे तुम्हारे परम पिता की संतान हो सकते हैं जो स्वर्ग में है क्योंकि उसने जो सूर्य बनाया है वह दुष्ट और भला दोनों पर उगता है और उचित और अनुचित दोनों पर वर्षा बरसाता है।

मैं तुम्हें एक नया आदेश देता हूं कि तुम एक दूसरे को प्यार करो जैसा कि मैंने तुमसे प्यार किया है क्योंकि तुम एक दूसरे से प्यार करते हो इसके द्वारा सभी लोग जानेंगे कि तुम सब मेरे शिष्य हो अगर तुम्हें दूसरे के लिए प्यार है।

जॉन में यीशु मसीह के शब्दों के कारण जो कहते हैं मैं मार्ग हूं सत्य हूं और जीवन हूं और मेरे माध्यम के बिना कोई भी परम पिता के पास नहीं आता कई ईसाई यीशु मसीह के अलावा ईश्वर तक पहुंचने का कोई अन्य तरीका स्वीकार करने में असमर्थ हैं। इसलिए ईसाई प्यार का एक सच्चा कार्य होगा इस बात का प्रचार करना कि केवल एक भगवान है और एक ही परित्राता है। ईसाइयों को अपने शत्रुओं से प्यार करने और उपदेशों के सुसमाचार प्रचारित करने को कहा जाता है।

सदी से पहले ईश्वर के प्राकट्य वाले विचार के अनुयाइयों का विश्वास है कि विश्व शांति यीशू मसीह के दूसरी बार अवतरित होने और महाकष्ट के बाद मसीह के 1000 साल का शासन शुरू होने तक विश्व शांति प्राप्त नहीं की जा सकती इसलिए ईसाइयों को केवल ईसा मसीह के माध्यम से मुक्ति का संदेश फैलाना चाहिए जबकि उनकी परलोक विद्या बताती है कि ईसा के हजार साल का शासन शुरू होने तक ईसा विरोधियों के शासन के सात सालों की महाकष्ट की अवधि के दौरान युद्ध और प्राकृतिक आपदाओं में काफी वृद्धि होगी।

हिंदू धर्म

परंपरागत रूप से हिंदू धर्म में वसुधैवकुटुंबकम की अवधारणा ग्रहीत की गई है जिसका अनुवाद है पूरा विश्व एक परिवार है। इस कथन का सार यह बताता है कि केवल कलुषित मन ही विभाजन और विभेद देखता है। हम जितना अधिक ज्ञान की तलाश करेंगें उतना ही समावेशी होंगे और हमें सांसारिक भ्रम या माया से अपने भीतर की आत्मा को मुक्त करना होगा हिंदुओं के मुताबिक ऐसा सोचा जाता है कि विश्व शांति केवल आंतरिक साधनों के माध्यम से हासिल की जा सकती है खुद को कृत्रिम सीमाओं से आजाद करके जो हमें अलग करती है लेकिन शांति हासिल करने के लिए अच्छी है।

इस्लाम धर्म

इस्लाम धर्म के अनुसार केवल एक खुदा में यकीन और एडम और ईव के रूप में समान माता-पिता का होना मनुष्यों का शांति और भाईचारे के साथ एक साथ रहने का सबसे बड़ा कारण है। विश्व शांति के इस्लामी विचार कुरान में वर्णित है जहां पूरी मानवता को एक परिवार के रूप में मान्यता प्राप्त है। सभी लोग एडम के बच्चे हैं। इस्लामी आस्था का उद्देश्य लोगों को अपनी बिरादरी की ओर अपने स्वयं के प्राकृतिक झुकाव की पहचान कराना है। इस्लामी परलोकशास्त्र के अनुसार पैगंबर जीसस के नेतृत्व में उनके दूसरे अवतरण में पूरा विश्व एकजुट हो जायेगा उस समय इतना ज्यादा प्रेम न्याय और शांति होगी कि दुनिया स्वर्ग जैसी हो जाएगी।

आईईसीआरसी द्वारा 5 अक्टूबर 2009 को शामिल किया गया विश्व शांति में धार्मिक भागीदारी पर इस्लामिक एजुकेशनल एंड कल्चरल रिसर्च सेंटर के अनुसंधान और विश्व शांति व्यवस्था की अवधारणा का विस्तातिरत वर्णन नवीनतम प्रकाशन वर्ल्ड पीस आर्डर टुआर्ड्स एन इंटरनेशनल स्टेट में किया गया है।

यहूदी धर्म

यहूदी धर्म पारंपरिक रूप से सिखाता है कि भविष्य में किसी समय एक महान नेता का उदय होगा और वह इज़राइल के लोगों को एकजुट करेगा जिसके परिणामस्वरूप विश्व में शांति और समृद्धि आयेगी ये विचार मूलत: तनाख और रब्बानी व्याख्याओं के उद्धरणों के हैं।

मसीहा के प्रसिद्ध विचार के अलावा टिक्कुन ओलम विश्व के संस्कार का विचार भी मौजूद है। टिक्कुन ओलम की उपलब्धि विभिन्न साधनों के माध्यम से होती है जैसे ईश्वर के दैवी आदेशों सब्बात कश्रुत कानूनों आदि का पालन करते हुए को आनुष्ठानिक रूप से पालन करने साथ ही साथ उदाहरण के द्वारा बाकी दुनिया को राजी करने से होती है। टिक्कुन ओलम की उपलब्धि दान और सामाजिक न्याय के माध्यम से भी होती है।

कई यहूदियों का मानना है कि जब टिक्कुन ओलम की उपलब्धि हो जायेगी या जब दुनिया का संस्कार हो जायेगा है तब मुक्तिदाता युग की शुरुआत होगी।

जैन धर्म

सभी तरह के जीवन मानवीय या गैरमानवीयए में करुणा जैन धर्म का केंद्र है। मानव जीवन एक अद्वितीय ज्ञान तक पहुंचने के एक दुर्लभ अवसर किसी भी व्यक्ति की हत्या नहीं करने इससे मतलब नहीं कि उसने क्या अपराध किया है के अवसर के रूप में मूल्यवान है जिसे अकल्पनीय घृणित माना जाता है। यह एक ऐसा धर्म है जिसमें अपने सभी संप्रदायों और परंपराओं के भिक्षुओं और गैरपादरी वर्ग की जरूरत होती है उन्हें शाकाहारी होने की आवश्यकता होती है। भारत के कुछ क्षेत्र जैसे गुजराती जैनियों से बहुत प्रभावित होते है और अक्सर पंथ के स्थानीय हिंदुओं का बहुमत शाकाहारी बन जाता है।

सिख धर्म

सभी जीव-जंतु उनके हैं वह सभी के लिए है। (गुरु ग्रंथ साहिब) इसके अलावा गुरुओं ने आगे उपदेश दिया है कि एक बेदाग ईश्वर की स्तुति गाओ वह सब के भीतर निहित है (गुरु ग्रंथ साहिब) सिख के गुरु की खास विशेषता यह है कि वह जाति-वर्गीकरण के ढांचे से परे जाता है और विनम्रता की ओर प्रेरित होता है। तब उसका श्रम ईश्वर के दरवाजे पर स्वीकार्य हो जाता है।

3.4 स्त्री, दलित एवं शांति शिक्षा

शांति शिक्षा पर बात करते हुए हमारा ध्यान अकस्मात समुदाय के ऐसे सदस्यों पर जाता है जो सबसे ज्यादा अशांति, शोषण, भेदभाव के शिकार रहे हैं। जेंडरः द कन्वेंशन ऑन एलिमिनेशन ऑफ ऑल फॉर्म्स ऑफ डिस्क्रिमीनेशन अगेन्स्ट वूमेन जिसे अक्सर महिलाओं के अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय विधेयक के रूप में जाना जाता है। महिलाओं के प्रति भेदभाव को इस तरह व्याख्यायित करता है। लिंग के आधार पर कोई भी पृथकीकरण, निष्कासन या प्रतिबंध जिसका लक्ष्य महिला के काम को छिपाने या कम आँकने का है...राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नागरिक या किसी अन्य क्षेत्र में स्त्री-पुरुष के बीच समानता, मानवाधिकार के आधार पर। भारत भी इसका सदस्य है। हम लैंगिक न्याय की संस्कृति को प्रोत्साहित करने के लिए बाध्य हैं। इस संबंध में कई स्वयंसेवी संगठन काम कर चुके और कर रहे हैं। हम अब भी उन व्यवस्थापक और व्यावहारिक बदलावों से दूर हैं जो लैंगिक न्याय की मांग करते हैं। हिंसा, अश्लीलता और लिंग संबंधी अपराधों में वृद्धि हो रही है। महिलाएं कार्यालयों, सार्वजनिक स्थानों या कार्यस्थलों और यहां तक कि घरों में भी असुरक्षा और भेदभाव का सामना कर रही हैं। कई क्षेत्रों में तो बालिका भ्रूण को भी नहीं बख्शा जाता। दुल्हनों को जलाना बदस्तूर जारी है। महिलाओं द्वारा किए गए काम को न तो सही ढंग से पहचाना गया है और न ही उन्हें पुरस्कृत किया गया है। दुखद बात तो यह है कि पाठ्यपुस्तक लेखन में भी लड़कियों या महिलाओं के साथ न्याय नहीं किया गया है। जो चित्र पाठ्यपुस्तकों में दिए जाते उनमें लड़के और पुरुष ही होते थे। और उन्हें श्रेष्ठ भूमिका प्रदान की गई है। जहां लड़कियों और महिलाओं की बारी आती है, वहां उन्हें कम आंका जाता है। यह महिलाओं की छवि को रूढ़ करते हैं और इस प्रकार उन पर हीनता को थोपा जाता है। जाति व्यवस्था का सफाया संवैधानिक शासनादेश है। जाति व्यवस्था हमारी सामाजिक पूँजी को जड़ बना देती है और लाखों लोगों को प्रगति की दौड़ से बाहर कर देती है। सामाजिक ह्रास और आर्थिक निशक्तिकरण सीधे तौर से लोकतांत्रिक संस्कृति पर जाति संबंधी निरंकुशता से जुड़ा है। शांति के लिए शिक्षा जाति व्यवस्था के सफाए को एक शांतिपूर्ण वृत्ति का रूप दे सकती हैं। अल्पसंख्यकों के सशक्तीकरण संबंधी संवैधानिक प्रावधानों में निहित लोकतांत्रिक तर्क को विद्यार्थियों को समझाने के लिए विशेष जोर दिए जाने की जरूरत है। (संदर्भ भारतीय संविधान का अनुच्छेद 30) अगर धार्मिक और भाषिक अल्पसंख्यकों की संस्कृति और पहचान की रक्षा के लिए विशेष प्रावधान नहीं किए जाते हैं, तो लोकतंत्र के बहुसंख्यकों की तानाशाही की ओर उन्मुख होने की संभावना बनी रहती है। इस संबंध में उचित प्रावधान किए जाने को अल्पसंख्यक तुष्टीकरण नहीं समझना चाहिए। बल्कि यह लोकतंत्र के स्वास्थ्य के लिए ही बेहतर है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर, अल्पसंख्यकों के कल्याण और सुरक्षा के प्रति राष्ट्र की प्रतिबद्धता को लोकतांत्रिक संस्कृति को बल प्रदान करने वाले के रूप में लेना चाहिए। राष्ट्र का जीवन हर समय विकास की स्थिति में रहता है। इस प्रक्रिया में सांस्कृतिक परंपराएं मुख्य भूमिका निभाती हैं। यही सपनों के भारत आकार प्रदान

करती हैं। बाद के समय में संस्कृति की परिकल्पना संबंधी संघर्ष विशेष महत्व रखते थे। संस्कृतियों के निवर्तमान मुकाबले में त्रिकोणीय शैली को देखा जा सकता है। सांस्कृतिक एकरूपता, सांस्कृतिक बहुरूपता, सांस्कृतिक उपाश्रयवाद लोकतंत्र की भाषा में, भारत के लोग समांगीकरण के खिलाफ अपनी भावनाएं जता चुके हैं और कुल मिलाकर भारत की आत्मा से भी परिचित हैं। धार्मिक, भाषिक और सांस्कृतिक बहुरूपता हमारे इतिहास और धरोहर में अंतर्निहित है। आज हमें इस विलक्षण नींव पर निर्माण करना है। हमारे समाज का निचला तबका भारत के सांस्कृतिक परिदृश्य से गायब रहा है। हाल के समय में हुए महत्वपूर्ण और भविष्यात्मक विकास हैं दलितों का जागना। इस नए उबाल या रुझान को भारतीय संदर्भ में शांति के लिए शिक्षाशास्त्रा में जोड़े जाने की जरूरत है। उपर्युक्त की रोशनी में शिक्षा होनी चाहिए। जागरूकता को प्रोत्साहित कर और सांस्कृतिक विविधता और बहुलता के उत्सव के लिए। राष्ट्रीय संदर्भ में उभरते निचले तबके के उफान की हकीकत को प्रतिबिंबित करने, इसकी ओर सकारात्मक अभिव्यक्ति को बढ़ावा देने और पाठ्यचर्या में इसे पर्याप्त स्थान देने के लिए।

3.5 सांस्कृतिक समन्वय, लोकतांत्रिक मूल्य, धर्मनिरपेक्षतावाद, उत्तरदायी नागरिकता एवं शांति शिक्षा

शिक्षा का असल उद्देश्य युवाओं को नागरिकता संबंधी कर्तव्यों को ठीक से निभाने के लिए प्रशिक्षण देना है। बाकी अन्य लक्ष्य तो आकस्मिक हैं। माध्यमिक शिक्षा आयोग की रिपोर्ट, (अक्तूबर 1952-जून 1953, पृष्ठ-101) सभी भारतीय आपस में जो साझा करते हैं, वह धर्म नहीं नागरिकता है। नागरिकता राष्ट्रीय एकता और अस्मिता का ढांचा है। उतरदायी नागरिकता सामूहिक शान्ति के लिए सांचा भी है। अब भी, शिक्षा के वर्तमान स्वरूप में नागरिकता शिक्षा की अनदेखी की जाती है। नागरिकता व्यक्तियों की निष्ठा और चेतना के बहुध्रुवी विस्तारण के इर्द-गिर्द घूमती है। इसे हल्के तौर पर नहीं लेना चाहिए। इसकी शुरुआत समुचित शिक्षा के माध्यम से की जा सकती है। वृद्धि के साथ स्व-चेतना से दूसरों के लिए चेतना का धीरे-धीरे विस्तारण होता है। सिर्फ अपने बारे में सचेत होने से आगे बढ़कर व्यक्ति खुद को एक परिवार, पास-पड़ोस, गाँव, नगर, एक मार्मिक समुदाय, एवं एक राष्ट्र और इन सबसे परे विश्वग्राम के सदस्य वेफ रूप में पहचानने लगता है। प्रत्येक स्तर पर चेतना का विस्तारण, निष्ठा का परिमार्जन और प्राथमिकताओं का पुनःसमायोजन होता है। बच्चों के लिए शैक्षिक प्रगति मापने के लिए अनिवार्य विषयों में अर्जित किए गए अंकों को ही मापदंड नहीं बनाना चाहिए बल्कि साथ यह भी देखना चाहिए कि एक कुल या जाति का सदस्य होन से आगे बढ़कर नागरिक होने की दिशा में उनकी चेतना कितनी दूरी तक जा सकी है। नागरिकता व्यक्तिगत चेतना के विभिन्न केंद्रों के आत्मोत्सर्ग की मांग भी नहीं करती, बल्कि उनके कार्य निष्पादन संबंधी सामंजस्य की मांग भी करती है। नागरिकता लोकतंत्रा का सार है। निश्चय ही यह नहीं हो सकता कि हम

नागरिकों को संविधान के मूल्यों और दृष्टिकोण से अनभिज्ञ रखें और फिर उनसे ज़िम्मेदार नागरिक बनने की आस लगाए। इस काम को आज जितना जल्दी हो सके करने की जरूरत है। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण एल.पी.जी. के युग से पहले हम व्यक्तियों से सामुदायिक और नागरिकता चेतना की निश्चयपूर्वक उम्मीद कर सकते थे। एल.पी.जी. में चलनेवाली उपभोक्तावादी और सुखवादी जीवनशैली नागरिकां को उपभोक्ता बना देती है। एकवाद उपभोक्तावाद का सार है, यह पारस्परिकता का क्षरण करता है और व्यक्ति में अपने कर्तव्यों को नजरअंदाज करने की भावना डालता है। वे राष्ट्र से सिर्फ अपने हित के लिए जुड़ते हैं। शिक्षित व्यक्ति का नागरिकता संबंधी कर्तव्यों से अनभिज्ञ रहना शिक्षा के उद्देश्य को ही पस्त कर देता है। नागरिकता और समाजवाद- शैक्षणिक दृष्टि से भारतीय संदर्भ में समाजवाद के लिए गरीबी और असमानता में वृद्धि महत्वपूर्ण मसले हैं। शिक्षा में शांति संबंधी रुख में इन चुनौतियों को शामिल किया जाना चाहिए।

नागरिकता और धर्मनिरपेक्षतावाद - हमारी परंपरा सहनशीलता सिखाती है। हमारा दर्शन सहनशीलता का उपदेश देता है। हमारा संविधान सहनशीलता का आचरण करता है। धर्मनिरपेक्ष शब्द को 42वें संशोधन के तहत 1976 में भारतीय संविधान के प्राक्कथन में शामिल किया गया था, फिर भी धर्मनिरपेक्षतावाद संविधान का पारिभाषिक विशेषण है। अनुच्छेद 14 समानता के अधिकार की बात करता है। इसे आगे बढ़ाते हैं अनुच्छेद 15 और 16, जो जाति और धर्म के आधार पर भेदभाव से सभी नागरिकों की रक्षा करते हैं। अनुच्छेद 19 और 21 सभी नागरिकों को भाषण और अभिव्यक्ति का अधिकार देते हैं। अनुच्छेद 27 राज्य को किसी धर्म के साथ पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाने से रोकता है। अनुच्छेद 25 सभी नागरिकों को विवेक की आजादी और अपनी आस्था को व्यवहार में लाने और प्रचारित करने का अधिकार देता है। अनुच्छेद 29 के द्वारा धार्मिक और भाषिक अल्पसंख्यकों को अपनी पहचान और संस्कृति सुरक्षित रखने का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 30 में उन्हें अपनी पसंद के संस्थान स्थापित करने और चलाने का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 30 के अभिप्राय और इसमें निहित दर्शन कई बार न्यायिक जांच और विचारधारात्मक असंतोष के तहत आ चुके हैं। संविधान के निर्माता इस धर्मनिरपेक्षता का मूल मानते थे। धर्मनिरपेक्षता से जुड़े कुछ मुद्दे नीचे दिए जा रहे हैं, जिन्हें भारतीय संदर्भ में शांति के लिए शिक्षा से जोड़े जाने की जरूरत हैः विविधता के लिए सम्मान, अंधविश्वास के विलोम के रूप में वैज्ञानिक अभिवृत्ति और आलोचनात्मक जांच की भावना। भारतीयों के रूप में अपनी साझी पहचान को सुदृढ़ करना। जिससे भारत के लिए साझे दृष्टिकोण से किलेबंदी की जा सके ताकि विभाजक संवेदनाओं और पूर्वाग्रहों को कम किया जा सके। हमने भारत का निर्माण किया है। अब हमें ऐसे भारतीयों के निर्माण की दिशा को संबोधित करना है, जो सभी विभाजक बाधाओं को पार कर सकते हैं और स्वयं को राष्ट्रनिर्माण के काम में लगा सकते हैं। विशिष्ट धार्मिक निष्ठा से व्यापक आध्यात्मिक मूल्यों की ओर रुख करना।

नागरिकता और लोकतंत्र - शिक्षा के दृष्टिकोण से भारतीय लोकतंत्र के दो महत्वपूर्ण आयाम है। अंतर्द्वंद्वों का हल और मेल-मिलाप लोगों की भागीदारी। हिंसा का रुख किए बिना संघर्षों को निपटाने के लिए उपलब्ध श्रेष्ठ व्यवस्था लोकतंत्र है। मतभेद प्रत्येक समाज का प्राकृतिक हिस्सा हैं। संघर्षों का जन्म मतभेदजन्य असंगति से होता है। जैसे कि, विचारों, विश्वास, विचारधारा, संस्कृति आदि में मतभेद। हम इन विवादों को शांति या हिंसा के दृष्टिकोण से देख सकते हैं। हिंसक हल में संघर्ष से मुक्ति प्रभावी समूह के खिलाफ वाले लोगों को आत्मसात् करने या उनके सफाये में निहित है। शांतिपूर्ण हल विविधता के लिए सम्मान विकसित करने या मतभेदों के प्रति सकारात्मक रुख अपनाना है। साथ ही साथ उन्हें ऐसे रास्ते पर ले आना है जिससे वे संपूर्ण प्रणाली को धता बताए बिना मतभेदों के साथ रहने लगते हैं। यही लोकतांत्रिक संस्कृति का निचोड़ है जिसके विकास के लिए भारत को शिक्षा को प्राथमिकता देनी चाहिए। यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि भारत विश्व में सबसे बड़ा लोकतंत्र है। शिक्षा जन भागीदारी का मूल है, जोकि लोकतंत्र की पहचान है। निरक्षरता लोकतंत्रा को अपाहिज बना देती है। निरक्षरों की भागीदारी चुनाव होने पर वोट डालने तक सीमित रह जाती है। इस तरह के लोकतंत्र में लोगों की, लोगों द्वारा और लोगों के लिए सरकार नहीं हो सकती। साक्षरता अपने आप में लोकतांत्रिक भागीदारी की पहल करने में सक्षम नहीं है। सहभागिता के लिए शांति पूर्वापेक्षा है। हिंसा सभी का दमन करती है, सिर्फ उन्हें छोड़कर जो सत्ता पर स्थापित होते हैं। दीर्घकालिक विवादों या युद्ध की स्थिति में नागरिकता का अधिकार निष्क्रिय हो जाता है। लोग शांति की स्थिति में ही सशक्त हो सकते हैं। जो लोकतंत्र शांति की संकृति को ग्रहण करने में असफल रहता है, वहां उसके कुलीनतंत्र, तानाशाही या फासीवाद में तब्दील होने का खतरा रहता है जैसा कि हिटलर की जर्मनी में हुआ। शिक्षा के माध्यम से अपवर्जन के प्रत्येक रूप का राष्ट्र के जीवन, संसाधनों और अवसरों से सफाया करना लोकतंत्र में शांति के एजेंडा का मूल सत्व है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु शांति के लिए शिक्षा शक्तिशाली और जरूरी सामान है।

गरीबी: गरीबी शिक्षा की मौजूदा व्यवस्था में दो मुख्य कमियों के लिए जिम्मेदार है, शिक्षा की विभिन धाराओं में जमीन आसमान का अंतर और ग्रामीण और जनजातीय भारत में स्कूल छोड़ने की उच्च दर। एल.पी.जी. के चलते अमीर और गरीब के बीच का अंतराल बढ़ने लगा है, ऐसे में जरूरी हो गया है कि गरीबी संबंधी आयामों को तुरंत और साहस के साथ शिक्षा में समाहित किया जाए।

जातिः जाति व्यवस्था का सफाया संवैधानिक शासनादेश है। जाति व्यवस्था हमारी सामाजिक पूँजी को जड़ बना देती है और लाखों लोगों को प्रगति की दौड़ से बाहर कर देती है। सामाजिक ह्रास और आर्थिक निशक्तिकरण सीधे तौर से लोकतांत्रिक संस्कृति पर जाति संबंधी निरंकुशता से जुड़ा है। शांति के लिए शिक्षा जाति व्यवस्था के सफाए को एक शांतिपूर्णवृत्ति का रूप दे सकती हैं।

जेंडर: द कन्वेंशन ऑन एलिमिनेशन ऑफ ऑल फॉर्म्स ऑफ डिस्क्रिमीनेशन अगेन्स्ट वूमेन (सी. ईडी. ए. डब्ल्यू.) जिसे अक्सर महिलाओं के अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय विधेयक के रूप में जाना

जाता है। महिलाओं के प्रति भेदभाव को इस तरह व्याख्यायित करता है।....लिंग के आधार पर कोई भी पृथकीकरण, निष्कासन या प्रतिबंध जिसका लक्ष्य महिला के काम को छिपाने या कम आँकने का है...राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नागरिक या किसी अन्य क्षेत्र में स्त्री-पुरुष के बीच समानता, मानवाधिकार के आधार पर भारत भी इसका सदस्य है। हम लैंगिक न्याय की संस्कृति को प्रोत्साहित करने के लिए बाध्य हैं। इस संबंध में कई स्वयंसेवी संगठन काम कर चुके और कर रहे हैं। हम अब भी उन व्यवस्थापक और व्यावहारिक बदलावों से दूर हैं जो लैंगिक न्याय की मांग करते हैं। हिंसा, अश्लीलता और लिंग संबंधी अपराधों में वृद्धि हो रही है। महिलाएं कार्यालयों, सार्वजनिक स्थानों या कार्यस्थलों और यहां तक कि घरों में भी असुरक्षा और भेदभाव का सामना कर रही हैं। कई क्षेत्रों में तो बालिका भ्रूण को भी नहीं बख्शा जाता। दुल्हनों को जलाना बदस्तूर जारी है। महिलाओं द्वारा किए गए काम को न तो सही ढंग से पहचाना गया है और न ही उन्हें पुरस्कृत किया गया है। दुखद बात तो यह है कि पाठ्यपुस्तक लेखन में भी लड़कियों या महिलाओं के साथ न्याय नहीं किया गया है। जो चित्र पाठ्यपुस्तकों में दिए जाते उनमें लड़के और पुरुष ही होते थे। और उन्हें श्रेष्ठ भूमिका प्रदान की गई है। जहां लड़कियों और महिलाओं की बारी आती है, वहां उन्हें कम आंका जाता है। यह महिलाओं की छवि को रूढ़ करते हैं और इस प्रकार उन पर हीनता को थोपा जाता है।

लोकतंत्र और अल्पसंख्यक: अल्पसंख्यकों के सशक्तीकरण संबंधी संवैधानिक प्रावधानों में निहित लोकतांत्रिक तर्क को विद्यार्थियों को समझाने के लिए विशेष जोर दिए जाने की जरूरत है। (संदर्भ भारतीय संविधान का अनुच्छेद 30) अगर धार्मिक और भाषिक अल्पसंख्यकों की संस्कृति और पहचान की रक्षा के लिए विशेष प्रावधान नहीं किए जाते हैं, तो लोकतंत्र के बहुसंख्यकों की तानाशाही की ओर उन्मुख होने की संभावना बनी रहती है। इस संबंध में उचित प्रावधान किए जाने को अल्पसंख्यक तुष्टीकरण नहीं समझना चाहिए। बल्कि यह लोकतंत्र के स्वास्थ्य के लिए ही बेहतर है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर, अल्पसंख्यकों के कल्याण और सुरक्षा के प्रति राष्ट्र की प्रतिबद्धता को लोकतांत्रिक संस्कृति को बल प्रदान करने वाले के रूप में लेना चाहिए।

राष्ट्रीय एकता

राष्ट्र का जीवन हर समय विकास की स्थिति में रहता है। इस प्रक्रिया में सांस्कृतिक परंपराएं मुख्य भूमिका निभाती हैं। यही सपनों के भारत आकार प्रदान करती हैं। बाद के समय में संस्कृति की परिकल्पना संबंधी संघर्ष विशेष महत्व रखते थे। संस्कृतियों के निवर्तमान मुकाबले में त्रिकोणीय शैली को देखा जा सकता है।

सांस्कृतिक एकरूपता

सांस्कृतिक बहुरूपता

सांस्कृतिक उपाश्रयवाद

लोकतंत्र की भाषा में, भारत के लोग समांगीकरण के खिलाफ अपनी भावनाएं जता चुके हैं और कुल मिलाकर भारत की आत्मा से भी परिचित हैं। धार्मिक, भाषिक और सांस्कृतिक बहुरूपता हमारे इतिहास और धरोहर में अंतर्निहित है। आज हमें इस विलक्षण नींव पर निर्माणकरना है। हमारे समाज का निचला तबका भारत के सांस्कृतिक परिदृश्य से गायब रहा है। हाल के समय में हुए महत्वपूर्ण और भविष्यात्मक विकास हैं दलितों का जागना। इस नए उबाल या रुझान को भारतीय संदर्भ में शांति के लिए शिक्षाशास्त्र में जोड़े जाने की जरूरत है।

उपरर्युक्त की रोशनी में शिक्षा होनी चाहिए। जागरूकता को प्रोत्साहित कर और सांस्कृतिक विविधता और बहुलता के उत्सव के लिए। राष्टींय संदर्भ में उभरते निचले तबके के उफान की हकीकत को प्रतिबिंबित करने, इसकी ओर सकारात्मक अभिव्यक्ति को बढ़ावा देने और पाठ्यचर्या में इसे पर्याप्त स्थान देने के लिए।

3.6 शांति शिक्षा की चुनौतियाँ सामुदायिक एवं साम्प्रदायिक संघर्ष

वर्तमान संघर्षों में क्रोध की भूमिका कोई कम नहीं है जैसे कि मध्य-पूर्व दक्षिण-पूर्व एशिया उत्तर-दक्षिण जैसी समस्याएँ आदि आदि। ये संघर्ष एक.दूसरे की मानवीयता को न समझ पाने के कारण जन्म लेते हैं। इसका उत्तर सैन्य शक्ति का विकास या अधिक उपयोग नहीं है और न ही हथियारों की दौड़। न ही यह विशुद्ध राजनैतिक है अथवा विशुद्ध तकनीकी। मूलत: यह आध्यात्मिक है इस रूप से जिस बात की आवश्यकता हैए वह एक आम मानवीय परिस्थिति की संवेदनशील समझ। नफरत और युद्ध किसी के लिए सुख नहीं ला सकती यहाँ तक कि युद्ध के विजेताओं के लिए भी नहीं। हिंसा सदा दुख ही लाती है और इस प्रकार मूल रूप से प्रतिकूलात्मक है। इसलिए अब समय आ गया है कि विश्व के नेता नस्ल संस्कृति और विचारधारा के अंतर से ऊपर उठें सोचें और एक-दूसरे को समान मानवीय परिस्थिति के दृष्टिकोण से देखें। ऐसा करना लोगों समुदायों राष्ट्रों और कुल मिलाकर विश्व के लिए लाभप्रद होगा।

आज के विश्व के तनाव का बड़ा भाग पूर्वी गुट बनाम पश्चिमी गुट के संघर्ष जो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से चल रहा है से उत्पन्न हुआ प्रतीत होता है। ये दोनों गुट एक दूसरे की बिलकुल प्रतिकूल दृष्टिकोण से व्याख्या करते हैं और देखते हैं। यह निरंतर अनौचित्य संघर्ष एक मानव के रूप में आपसी स्नेह और सम्मान के अभाव के कारण है। पूर्वी गुट के देशों को पश्चिमी गुट के देशों के प्रति घृणा को कम करना चाहिए क्योंकि पश्चिमी गुट भी मनुष्यों से ही बना है। पुरुष महिलाओं और बच्चे। इसी तरह से पश्चिमी गुट के देशों को भी पूर्वी गुट के देश के लोगों के प्रति घृणा भाव कम करना होगा क्योंकि पूर्वी गुट में भी मनुष्य ही हैं। इस परस्पर घृणाभाव को कम करने में दोनों गुटों के नेताओं की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। परन्तु सबसे पहले और सबसे प्रमुखए नेताओं को अपनी स्वयं की और दूसरों की मानवीयता का अनुभव करना होगा। इस मूलभूत अनुभूति के बिना

सुसंगठित घृणा को प्रभावी तरीके से कम करने की प्राप्ति बहुत कम होगी। की ही तरह मिलेंगे। पर जैसे ही उनकी पहचान अमेरिका के राष्ट्रपति और सोवियत संघ के प्रमुख के तौर पर होती है। परस्पर संदेह और गलतफहमी की दीवार दोनों को अलग कर देती है। बिना किसी कार्यसूची के अनौपचारिक लंबी भेंट के रूप में अधिक मानवीय संपर्क उनकी आपसी समझ को सुधारेगा वे एक-दूसरे को मनुष्य के तौर पर समझना सीखेंगे और इसी समझ के आधार पर अंतरराष्ट्रीय समस्याओं को फिर सुलझाने का प्रयास करेंगे। कोई भी दो गुट विशेषकर जिनका इतिहास शत्रुता से भरा हो आपसी संदेह और घृणा के वातावरण में लाभदायक बातचीत नहीं कर सकते। मेरा सुझाव है कि विश्व के नेताओं को वर्ष में एक बार किसी सुंदर स्थान पर बिना किसी काम के मिलना चाहिए केवल एक दूसरे को मनुष्य के तौर पर समझने के लिए। फिर बाद में वे परस्पर और वैश्विक समस्याओं पर चर्चा के लिए भेंट कर सकते हैं। मुझे विश्वास है कि अन्य लोग भी मेरी इच्छा से सहमति रखते हैं कि विश्व के नेताओं को सम्मेलन में एक-दूसरे की मानवीयता को लेकर परस्पर सम्मान और समझ के वातावरण में मिलना चाहिए।

समूचे विश्व में व्यक्ति के व्यक्ति से संपर्क को सुधारने के लिए मैं अंतरराष्ट्रीय पर्यटन को और अधिक बढ़ावा मिलता देखना चाहूँगा। साथ ही पत्र-पत्रिकाएँ विशेषकर लोकतांत्रिक समाजों में मानवीयता की परम एकता को दर्शाने वाली मानवीय दिलचस्पी की घटनाओं को प्रकाशित कर विश्व शांति में उल्लेखनीय योगदान दे सकती है। अंतरराष्ट्रीय अखाड़े में कुछ बड़ी शक्तियों के उभरकर सामने आने के साथ ही अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं की मानवीय भूमिका को परे रखकर उसे उपेक्षित किया जा रहा है। मैं आशा करता हूँ कि इसे सुधारा जाएगा और सभी अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं विशेष रूप से संयुक्त राष्ट्र मानवता के अधिकाधिक लाभ को सुनिश्चित करते हुए अंतरराष्ट्रीय समझ को बढ़ाने में अधिक सक्रिय और प्रभावी भूमिका निभाएगा। यह अत्यंत दुखदपूर्ण होगा यदि कुछ शक्तिशाली सदस्य अपने एकतरफा हित साधने के लिए संयुक्त राष्ट्र जैसी विश्व संस्था का दुरुपयोग करना जारी रखें। संयुक्त राष्ट्र को विश्व शांति का साधन बनना चाहिए। यह विश्व संस्था सभी के द्वारा सम्मानित की जानी चाहिए क्योंकि संयुक्त राष्ट्र सभी छोटे दमित देशों की आशाओं का एकमात्र स्रोत है और इस तरह से समूचे ग्रह का।

उग्रवाद का इतिहास

औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्रता के बाद भारत और पाकिस्तान ने कश्मीर के राजशाही राज्य के लिए युद्ध किया। युद्ध के अंत में भारत ने कश्मीर के सबसे महत्वपूर्ण भागों पर कब्ज़ा किया। जबकि वहां हिंसा की छिटपुट गतिविधियों को देखा जा सकता था लेकिन कोई संगठित उग्रवाद आंदोलन नहीं था। इस अवधि के दौरान जम्मू और कश्मीर में विधायी चुनाव को पहली बार 1951 में आयोजित किया गया और शेख अब्दुल्ला की पार्टी निर्विरोध रूप से खड़ी हुई बहरहाल शेख अब्दुल्ला कभी केंद्र सरकार की कृपा के पात्र बन जाते थे और कभी घृणा के और इसीलिए अक्सर

ही उन्हें बर्खास्त कर दिया जाता और कभी पुनः बहाल कर दिया जाता है। यह समय जम्मू और कश्मीर में राजनीतिक अस्थिरता का था और कई वर्षों तक संघीय सरकार द्वारा राज्य में राष्ट्रपति शासन को लागू किया गया। शेख अब्दुल्ला की मृत्यु के बाद उनके बेटे फारूक अब्दुल्ला ने जम्मू और कश्मीर के मुख्य मंत्री पद को हासिल किया। फारुक अब्दुल्ला अंततः केन्द्र सरकार के साथ पक्ष में नहीं रहे और भारत की प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने उन्हें बर्खास्त कर दिया था। एक साल बाद फारूक अब्दुल्ला 1987 के चुनावों के लिए सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी के साथ गठबंधन करने की घोषणा की। कथित तौर पर चुनाव में फारूक अब्दुल्ला के पक्ष में धांधली की गई।

इसके बाद जिन नेताओं को चुनाव में अन्यायपूर्ण ढंग से हार मिली थी आंशिक रूप से यह सशस्त्र विद्रोह की ओर अग्रसर हुए पाकिस्तान ने इन समूहों को सैन्य सहायताए हथियार भर्ती और प्रशिक्षण की आपूर्ति की 2004 में शुरुआत करते हुए पाकिस्तान ने कश्मीर में विद्रोहियों के लिए अपने समर्थन की समाप्ति शुरू की यह इसलिए हुआ क्योंकि कश्मीर से जुड़े आतंकवादी समूह ने दो बार पाकिस्तान के राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ की हत्या करने की कोशिश की। उनके उत्तराधिकारी आसिफ अली जरदारी ने नीति को जारी रखा और कश्मीर में आतंकवादियों को विद्रोही कहा हालांकि यह स्पष्ट नहीं है कि पाकिस्तान की खुफिया एजेंसी इंटर सर्विसेज इंटेलिजेंस को उग्रवाद को नियंत्रित करने और समर्थन करने वाली एजेंसी समझा जाता था जो बाद में कश्मीर में उग्रवाद को समाप्त करने में पाकिस्तान प्रतिबद्ध हुआ। प्राथमिक घरेलू आंदोलन को प्रेरित करने के लिए बाहरी ताकतों द्वारा मुख्य रूप से समर्थित उग्रवाद की प्रकृति में परिवर्तन के बावजूद भारतीय सरकार नागरिक स्वतंत्रता पर कार्रवाई करने के लिए भारतीय सीमा पर बड़े पैमाने पर सैनिकों को भेजती रही।यहां पर भारतीय शासन के खिलाफ व्यापक रूप से विरोध प्रदर्शन किया गया।

उग्रवाद के कारण

मानवीय शोषण

आईएसआई की भूमिका

राजनीतिक अधिकार

मुजाहिद्दीन प्रभाव

सोवियत संघ द्वारा अफगानिस्तान के आक्रमण के बाद मुजाहिद्दीन लड़ाकू पाकिस्तान के समर्थन के साथ धीरे-धारे कट्टरपंथी इस्लामी विचारधारा के प्रसार के लक्ष्य के साथ कश्मीर में घुसने लगे।

धर्म

हिन्दु बहुल भारत में जम्मू और कश्मीर एकमात्र मुस्लिम बहुल राज्य है। जबकि खुद भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है पूरे भारत में हिंदुओं की तुलना में मुसलमान राजनीतिक सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से हाशिए पर हैं। इसके चलते मुसलमानों का मानना है वे भारत के वासी नहीं हैं और इन्होंने कश्मीरी लोगों को विमुख किया। 99 एकड़ वन ज़मीन एक हिन्दू संगठन को हस्तांतरित करने

के सरकारी फैसले ने विरोधी भावना को और तेज किया और जम्मू और कश्मीर में एक विशालतम विरोध रैली को प्रेरित किया।

अन्य कारण

भारतीय राष्ट्रीय जनगणना से पता चलता है कि अन्य राज्यों की तुलना में कश्मीर सामाजिक विकास संकेतकों जैसे कि साक्षरता दर में सबसे पिछड़ा हुआ है और वहां असामान्य रूप से अत्यधिक बेरोजगारी है। यह सरकार विरोधी भावना के लिए काफी योगदान देता है।

वामपंथी उग्रवाद प्रभाग का गठन सुरक्षा और विकास दोनों ही दृष्टिकोणों से नक्सली खतरे से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए भारत के गृह मंत्रालय के अधीन 19 अक्तूबर 2006 को किया गया है। यह नक्सली स्थिति और प्रभावित राज्यों द्वारा नक्सली समस्या से निपटने के लिए किए जा रहे उपायों पर नजर रखेगा जिसका उद्देश्य प्रभावित राज्यों द्वारा तैयार की गई अथवा तैयार की जाने वाली स्थान विशिष्ट कार्य योजनाओं के अनुरूप मूलभूत पुलिस व्यवस्था और विकास दायित्वों में सुधार करना है और यह प्रभाग नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में विभिन्न विकासात्मक योजनाओं के तहत जारी की गई निधियों का इष्टतम उपयोग और उनका उचित कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के लिए संबंधित मंत्रालयों विभागों के साथ समीक्षा करता है। छत्तीसगढ़, झारखंड, ओडिशा, बिहार, पश्चिम बंगाल आंध्र प्रदेश और उत्तर प्रदेश राज्यों को वामपंथी उग्रवाद से प्रभावित माना जाता है हालांकि अलग-अलग राज्यों में वामपंथी उग्रवाद की स्थिति अलग-अलग है।

3.7 जीवनशैली के रूप में शांति के लिए शिक्षा

युद्ध और हिंसा जीवन शैली के उपोत्पाद हैं। हिंसा की जड़ें जरूरतों की कभी न खत्म होने वाली इच्छाओं में तब्दील होने में गड़ी हुई हैं जो अस्थिर जीवन शैली को जन्म देती हैं। शांति के लिए आधार तैयार करने के लिए मुख्य रणनीति जीवन शैली को पुनःस्थापित करने की जरूरत होनी चाहिए न कि असीमित लालच को कम करने की। मनलोलुपता वह एकतरफ़ा संबंध है जो देखभाल के तर्क का विरोध करती है। यह प्रकृति से एक निर्जीव वस्तु सा व्यवहार करती है। जिसका जितना दोहन किया जाए उतना कम। इस तरह विकास लूट-खसोट में बदल जाता है। लालसाओं से संचालित विकास हिंसक और अस्थिर होगा। मौजूदा पर्यावरणीय संकट भी इसी के कारण से है। भूमंडलीकरण, लालच या भूख को ईश्वर मानता है। आसक्त और उपभोक्तावादी जीवन शैली की पहचान भाव शून्यता और निष्ठुरता है। ये शांति की संस्कृति के सबसे बड़े दुश्मन हैं। आमूल-चूल शैक्षिक सुधारों के लिए यह जरूरी है कि इसके लिए दृढ़ निश्चय किया जाए। सुधार एक आंदोलन है न कि कुछ असंबध प्रसाधनों का जोड़-तोड़। पुनःअभिविन्यास के विचार के संपूर्ण दृष्टिकोण से सिखाने रूपी वाहन के कई हिस्सों को फिर से डिजाइन करना होगा। जिससे यह पक्का हो सके कि पुराने मॉडल की खामियों को दूर कर लिया गया है। यह नाव को नदी के एक किनारे से दूसरे किनारे

तक चप्पू चलाकर ले जाने जैसा है। जब तक नाव को लंगर से मुक्त नहीं किया जाता आप कितने भी जोरदार और तेजी से चप्पू चला लें, कोई फर्क नहीं पड़ेगा। पुराने मार्ग की बाधाओं को दूर किए बिना परिवर्तित दिशा के कवच को खोलकर वांछित परिणाम नहीं पाए जा सकते हैं। शांति के लिए शिक्षा की सफलता को सुनिश्चित कराने के लिए तुरंत और बेबाकी से कुछ मुख्य क्षेत्रों को संबोधित किए जाने की जरूरत है।

3.8 सारांश

ऐसी इच्छा जिसके अंतर्गत ऐसे वातावरण की अथवा एक ऐसी स्थिति की परिकल्पना की जाती है, जो अव्यवस्था से मुक्त हो जिसमें टकराव न हो, हिंसक संघर्ष न हो। युद्ध, उपद्रव दमन, हिंसा, आतंक, शोषण से रहित अवस्था, अर्थात् मन की वह अवस्था जिसमें वह क्षोभ, दुख आदि से रहित हो जाता है, शांति कहलाती है। शांति-शिक्षा, अर्थात शांति की शिक्षा। अति साधारण शब्दों में वह शिक्षा, जो शांति की अनुभूति कराए, जो शिक्षा, शांति के विकास में पथप्रदर्शन करे तथा शांति का जीवन में महत्व प्रकट करते हुए, इसके मार्ग पर चले। हमारी परंपरा सहनशीलता सिखाती है। हमारा दर्शन सहनशीलता का उपदेश देता है। हमारा संविधान सहनशीलता का आचरण करता है।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिये –

1. शांति शिक्षा से आप क्या समझते हैं?
2. शांति शिक्षा का उद्भव एवं विकास के बारे में बताइए।
3. स्त्री, दलित एवं शांति शिक्षा में क्या सम्बन्ध है?
4. सांस्कृतिक समन्वय, लोकतांत्रिक मूल्य, धर्मनिरपेक्षतावाद, उत्तरदायी नागरिकता एवं शांतिशिक्षा में क्या सम्बन्ध है?
5. शांति शिक्षा की चुनौतियों के बारे में लिखिए।

3.9 संदर्भ ग्रंथ

1. https://www.unicef.org/education/files/PeaceEducation.
2. https://en.wikipedia.org/wiki/Peace_education
3. http://epathshala.nic.in/wp-content/doc/NCF/Pdf/education_for_peace.
4. Consortium on Peace Research, Education and Development, 1986. ‘Report on theJuniata Process’.
   COPRED Peace Chronicle, December 1986.
5. Cremin, P., 1993. ‘Promoting education for peace.’ In

6. Cremin, P., ed.,1993, Educationfor Peace. Educational Studies Association of Ireland and the Irish
Peace Institute.Debus, Mary, 1988.

7. Hicks, D., 1985. Education for peace: issues, dilemmas and alternatives. Lancaster: St.Martin’s College.

8. Fateem, Elham, 1993. ‘Concepts of peace and violence: focus group discussions on asample of
children, parents, teachers and front-line workers with children’. Cairo: TheNational Center for
Children’s Culture (Ministry of Culture) and UNICEF.

9. Fountain, S., 1998. ‘Peace education/conflict resolution evaluation methods.’ New York,UNICEF
(unpublished paper, available from the author).

10. Cremin, P., ed., 199.,Education for Peace. Educational Studies Association OfIrelandand the Irish
Peace Institute.

11. Regan, C., 1993. ‘Peace education: a global imperative’. UNICEF, 1994.

12. World Health Organization, 1998. ‘Violence prevention: an important element of ahealth-promoting
school’ (WHO Information Series on School Health, Document Geneva, WHO

13. प्रसाद, डी. एन, ‘शांति शिक्षा की दार्शनिकता’ (लेख)

14. कुमार, डा. रविन्द्र & डंगवाल, डा. किरनलता, ‘मूल्य अवं शांति शिक्षा’ आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन्स,

इकाई-4 शांति शिक्षा के दार्शनिक परिप्रेक्ष्य

इकाई की रुपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 शांति शिक्षा के संदर्भ में महात्मा गाँधी के विचार
4.4 टैगोर और गांधी
4.5 शिक्षा के संदर्भ में महर्षि अरविन्द के विचार
4.6 शांति शिक्षा के संदर्भ में जे. कृष्णमूर्ति के विचार
4.7 दलाई लामा : विश्व शांति को लेकर मानवीय दृष्टिकोण
4.8 शांति शिक्षा के संदर्भ में पाउलो फ्रेरे के विचार
4.9 शांति शिक्षा के प्रसार में विद्यालय एवं शिक्षक की भूमिका
4.10 सारांश

4.1 प्रस्तावना

भारत जिसकी आबादी 1.25 अरब है। सदियों से जातियों और धर्मों के सामंजस्यपूर्ण सम्मिलन का घर रहा है।स्थाई शांति परस्पर सम्मान की बुनियाद पर ही स्थापित की जा सकती है जिसकी टैगोर और गांधी दोनों के द्वारा लगातार और मुखर रूप में वकालत की गई। महात्मा गांधी ने अपने विचारों और कार्य से मार्टिन लूथर किंग, जूनियर लेक वालेसा, स्टीव बीको, नेल्सन मंडेला, डेसमंड टूटू, दलाई लामा और आंग सान सू की सहित दुनिया भर के कई नेताओं को प्रभावित किया। मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने तो यहां तक कहा ईसा मसीह ने भावना और प्रेरणा दी जबकि गांधी ने इसका तरीका बताया। एक अन्य अवसर पर उन्होंने कहायदि मानवता को प्रगति करना है तो गांधी अपरिहार्य हैं। वह शांति और सद्भाव की दुनिया की दिशा में विकसित मानवता की दृष्टि से प्रेरित जीवन जीते सोचते और कार्य करते थे। महात्मा ने एक बार पूछा अधिनायकवाद या स्वतंत्रता और लोकतंत्र के पवित्र नाम पर किये गए विवेकहीन विनाश से मृत अनाथों और बेघरों को क्या फर्क पड़ता है; मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि टैगोर और गांधी जी द्वारा दिए गए सच्चाई खुलापन संवाद और अहिंसा के विचार असहिष्णुता कट्टरता और आतंकवाद के साथ सामना कर रही दुनिया के लिए आगे का सबसे अच्छा मार्ग प्रदान करते हैं। संघर्षों और तनावों के स्थायी समाधान की बेतहाशा खोज में लगी दुनिया में उनके मूल्य और दृष्टि पहले किसी भी समय की तुलना में आज अधिक प्रासंगिक हैं। इसलिए इन आदर्शों का विशेष रूप से युवाओं के बीच व्यापक प्रसार किया जाना चाहिए। सभी बातों के अंत में कहा जा सकता है कि जो दूर हैं और अलग हैं उन्हें समझने की इच्छा ही वैश्विक शांति सुनिश्चित करने का सबसे अच्छा तरीका है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत आप –

1. शांति शिक्षा के संदर्भ में महात्मा गाँधी के विचारको जान सकेंगे।
2. शांति शिक्षा के संदर्भ में टैगोर के विचारको जान सकेंगे।
3. शिक्षा के संदर्भ में महर्षि अरविन्द के विचार को जान सकेंगे।
4. शांति शिक्षा के संदर्भ में जे. कृष्णमूर्ति के विचार को जान सकेंगे।
5. शांति शिक्षा के संदर्भ में दलाई लामा : विश्व शांति को लेकर मानवीय दृष्टकोण को समझ सकेंगे।
6. शांति शिक्षा के संदर्भ में पाउलो फ्रेरे के विचारको जान सकेंगे।
7. शांति शिक्षा के प्रसार में विद्यालय एवं शिक्षक की भूमिका को समझ सकेंगे।

4.3 शांति शिक्षा के संदर्भ में महात्मा गाँधी के विचार

"अगर हम विश्व को वास्तविक शांति का पाठ पढ़ाना चाहते हैं, तो हमें शुरुआत बच्चों से करनी होगी।"-महात्मा गाँधी

महान गाँधीवादी नेता और भारत रत्न से सम्मानित नेल्सन मण्डेला कहते हैं- "शिक्षा वह हथियार है, जिससे दुनिया बदली जा सकती है।"

भारत में शिक्षा की स्थिति पर हाल में हुई खोजबीन ऐसे प्रश्नों से जूझती हुई दिखाई देती है जिनके उत्तर शिक्षाविदों, दार्शनिकों और सामाजिक सिद्धान्तकारों के पास आसानी से नहीं मिलते। सुविधा सम्पन्न भारतीयों को तो प्रतिष्ठित संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त हो जाती है, लेकिन लाखों लोगों को प्राथमिक शिक्षा भी नहीं मिल पाती। शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले दार्शनिक यह सवाल भी उठाते हैं कि क्या सम्पूर्ण इन्सान को शिक्षित किया जा सकता है? विशेष तौर से ऐसे हालात में जब प्रौद्योगिकी और बौद्धिकता के क्षेत्रों में रूझान विशेषज्ञता की ओर लगातार है। वे कौन-से साधन हैं जिनसे संवेदनशील और होनहार व्यक्तित्व विकसित किए जा सकते हैं? उदाहरण के लिए क्या प्रतिस्पर्द्धा ज्ञानार्जन में मददगार सबसे बेहतर तरीका है? क्या शान्ति शिक्षा का एक केन्द्रीय उद्देश्य हो सकता है? इन प्रश्नों के अनुत्तरित रह जाने का कारण शायद इस दृष्टिकोण में छुपा है कि शिक्षा को सम्पूर्ण मानव से सम्बद्ध होना चाहिए। यानी सामाजिक, बौद्धिक, भावनात्मक और शारीरिक स्तर पर हो न कि विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञता से।

देश के इतिहास में कुछ लोग ऐसे हुए हैं जिनके लिए ये सवाल केवल अकादमिक महत्व के नहीं थे। अधिकतर शिक्षित भारतीय सम्भवत: गाँधी जी द्वारा अपनाए गए अहिंसा, असहयोग, सत्याग्रह, स्वराज, आदि के सिद्धान्तों की थोड़ी बहुत जानकारी तो रखते ही है। गाँधी के लिए ये ऐसे रचनात्मक सिद्धान्त थे जिन्हें वे अपने सहकर्मियों तथा आमजन तक पहुँचाने की कोशिश में रहते थे।

अहिंसक विरोध और आत्मनिर्भरता के सिद्धान्तों के माध्यम से गाँधी एक ऐसी संस्कृति की रचना करना चाहते थे जिसके तहत व्यक्ति अपने मनमस्तिष्क में मौजूद हिंसा से रूबरू हो पाए और समाज के सुधार के लिए प्रयास कर पाए। स्वयं गाँधी की रचनात्मक प्रेरणा शोषितों के हितों की पहचान और उनके साथ एक होने की इच्छा से पैदा हई प्रतीत होती है पहले दक्षिण अफ्रीका में और फिर भारत में।

मनोविज्ञानी हॉवर्ड गार्डनर ने गाँधी की रचनात्मकता को परिभाषित करने का बहुत ही दिलचस्प तरीका विकसित किया है। गार्डनर की राय में लोगों को प्रभावित करने वाला व्यक्ति उन रचनाशील इन्सानों में से होता है जो लोगों के बड़े समूहों के मनमस्तिष्क के साथ सम्बन्ध बनाते हुए मानव गतिविधि का कोई नया क्षेत्र रचते हैं। उद्देश्य होता है कि लोग इस रूप में प्रभावित हों कि स्वयं और संसार के बारे में सोचना शुरू करें। प्रभाव पैदा करने वाले के पास कुछ विशेष गुण होते हैं मुख्यत: भाषाई और वृत्तात्मक। जिनकी मदद से वे भाषा और कहानी के माध्यम से लोगों की बहुत बड़ी संख्या तक अपनी पहुँच बना पाते हैं। एक नरेटर के रूप में गाँधी का विशेष गुण यह था कि वे व्यक्ति और सामूहिक राष्ट्रीय स्वत्व की पहचान उसमें निहित अहिंसा और आत्मनिर्भरता की आरक्षित ऊर्जा से करवा पाते थे।

शिक्षा को लेकर गाँधी की दृष्टि निश्चित तौर पर व्यक्तिगत और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के विचार से जुड़ी हुई है। 1937 में गाँधी द्वारा बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा के रूप में प्रस्तावित नई तालीम या नई शिक्षा के केन्द्र में आजादी की परिकल्पना थी। लेकिन इसका अर्थ आत्मनिर्भरता तथा समाज के हित में काम करना भी था। वे ब्रिटिश राज के जाने के बाद एक न्यायसंगत शान्तिपूर्ण गैर लाभकारी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे। नई तालीम की परिकल्पना एक व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन के लिए शिक्षा के रूप में की गई थी। एक व्यक्ति में छुपी हुई सामर्थ्य को उसके सम्पूर्ण जीवन के दौरान विकसित किया जा सकता है और प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन के विभिन्न चरणों में सम्भावनाएँ तलाशनी चाहिए।

प्रतिस्पर्द्धा की व्यवस्था के स्थान पर सहयोग की व्यवस्था लाने का भरपूर प्रयास किया गया। प्रतिस्पर्द्धा यानी बच्चों को प्रथम और अन्तिम के रूप में आंकना ईर्ष्या और बेईमानी का कारण बनता है। दूसरी ओर बच्चे उनकी दिलचस्पी के विषयों पर व्यर्थ करेंगे इसके लिए उन्हें किसी बनावटी उत्प्रेरक की आवश्यकता महसूस नहीं होगी। बच्चों में सहयोग की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। हो सकता है कि कई स्कूलों की व्यवस्था आपसी सहयोग से काम करने के लिए लम्बे समय काल प्रदान न करवाए लेकिन प्रत्येक कक्षा में कुछ समय बच्चों द्वारा इकट्ठे काम करने के लिए अलग से रखा जा सकता है जैसे गणित की कुछ समस्याओं के लिए या कला के किसी प्रोजेक्ट के लिए। फिर वे चर्चा कर सकते हैं या प्रस्तुतीकरण हो सकता है जिसमें वे बताएँ कि उन्होंने किस प्रकार कार्य किया। चर्चा को कक्षा की एक गतिविधि बनाने से उन्हें उनके साथ भी सहयोग करने और

सम्पर्क में आने का मौका मिलता है जिनके साथ आमतौर पर यह नहीं हो पाता। सहयोग की यह भावना धीरे-धीरे साझेपन और शान्तिपूर्ण तरीके से मिलकर काम करने की एक संस्कृति को पैदा कर सकती है।

शिक्षा पर गाँधी के सब विचार मुख्य तौर से नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित थे। गाँधी के जीवन के बारे में पढ़ने पर हमें महसूस होता है कि उन्होंने जो भी काम उठाया या जो भी विश्वास रखा उसमें वे व्यक्तिगत तौर पर बहुत ही गहराई से शामिल रहते थे। लेकिन इस प्रकार की व्यक्तिगत सम्बद्धता बहुत बार एक उच्च सत्य तक पहुँचने को अपना उद्देश्य समझती थी और यह सत्य धार्मिक ग्रन्थों की गाँधी की व्याख्या से हासिल किया सत्य था।

यहीं से शायद गाँधी ने नैतिकता का गहरा भास पाया और सत्य के प्रति निष्ठा भी। जिससे वे अपने विद्यार्थियों को प्रभावित करना चाहते थे। इस प्रकार विद्यार्थियों के साथ अन्तरक्रिया में वे उन मूल्यों की बात करते थे जिन्हें उनका मानना था कि अनदेखा नहीं किया जा सकता। माता-पिता के लिए आदर अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनना दिल में करुणा का होना और साम्राज्य से मुक्ति के लिए संघर्ष के सन्दर्भ में निडरता का होना। गाँधी ने व्यक्तिगत प्रयोगों के और उदाहरण रखने के माध्यम से जो जीया और सिखाया उस ओर ध्यान दिया जाए तो शायद शिक्षा का रूझान सिद्धान्तों में परिवर्तन की ओर बने।

महात्मा गांधी-शांति के नायक

2 अक्टूबर का दिन कृतज्ञ राष्ट्र के लिए राष्ट्रपिता की शिक्षाओं को स्मरण करने का एक और अवसर उपलब्ध कराता है। भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में मोहन दास कर्मचंद गांधी का आगमन ख़ुशी प्रकट करने के साथ-साथ हज़ारों भारतीयों को आकर्षित करने का पर्याप्त कारण उपलब्ध कराता है तथा इसके साथ उनके जीवन-दर्शन के बारे में भी ख़ुशी प्रकट करने का प्रमुख कारण है जो बाद में गाँधी दर्शन के नाम से पुकारा गया। यह और भी आश्चर्यजनक बात है कि गाँधी जी के व्यक्तित्व ने उनके लाखों देशवासियों के दिल में जगह बनाई और बाद के दौर में दुनियाभर में असंख्य लोग उनकी विचारधारा की तरफ आकर्षित हुए।

इस बात का विशेष श्रेय गाँधी जी को ही दिया जाता है कि हिंसा और मानव निर्मित घृणा से ग्रस्त दुनिया में महात्मा गाँधी आज भी सार्वभौमिक सद्भावना और शांति के नायक के रूप में अडिग खड़े हैं और भी दिलचस्प बात यह है कि गाँधी जी अपने जीवनकाल के दौरान शांति के अगुवा बनकर उभरे तथा आज भी विवादों को हल करने के लिए अपनी अहिंसा की विचारधारा से वे मानवता को आश्चर्य में डालते हैं। बहुत हद तक यह महज़ एक अनोखी घटना ही नहीं है कि राष्ट्र ब्रिटिश आधिपत्य के दौर में कंपनी शासन के विरूद्ध अहिंसात्मक प्रतिरोध के पथ पर आगे बढ़ा और उसके साथ ही गाँधी जी जैसे नेता के नेतृत्व में अहिंसा को एक सैद्धांतिक हथियार के रूप में अपनाया। यह बहुत आश्चर्यजनक है कि उनकी विचारधारा की सफलता का जादू आज भी जारी है। क्या कोई इस

तथ्य से इनकार कर सकता है कि अहिंसा और शांति का संदेश अब भी अंतरराष्ट्रीय या द्विपक्षीय विवादों को हल करने के लिए विश्व नेताओं के बीच बेहद परिचित और आकर्षक शब्द है यह कहने की जरूरत नहीं कि इस बात का मूल्यांकन करना कभी संभव नहीं हुआ कि भारत और दुनिया किस हद तक शांति के मसीहा महात्मा गाँधी के प्रति आकर्षित है। हालाँकि यह शांति अलग तरह की शांति है। खुद शांति के नायक के शब्दों में मैं शांति पुरूष हूं लेकिन मैं किसी चीज की कीमत पर शांति नहीं चाहता। मैं ऐसी शांति चाहता हूं जो आपको क़ब्र में नहीं तलाशनी पड़े। यह विशुद्ध रूप से एक ऐसा तत्व है जो गाँधी को शांति पुरुष के रूप में उपयुक्त दर्जा देता है। यह उल्लेखनीय है कि शांति का अग्रदूत होने के बावजूद महात्मा गाँधी न सिर्फ किसी ऐसे व्यक्ति से अलग-अलग रहे जो शांति के नाम पर कहीं भी या कुछ भी गलत मंजूर करेगा।

गाँधी जी की शांति की परिभाषा संघर्ष के बग़ैर नहीं थी। दरअसल उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में गोरों के शासन के विरूद्ध संघर्ष में बुद्धिमानी से उनका नेतृत्व किया था। इसके बाद 1915 में भारत वापस आने पर गाँधी जी ने समाज सुधारक के साथ अस्पृश्यता और अन्य सामाजिक बुराइयों के विरूद्ध दीर्घदर्शक के रूप में अहिंसा का इस्तेमाल किया। बाद में उन्होंने राजनीतिक परिदृश्य तक इसका विस्तार किया और दीर्घकाल में अपने प्रेम शांति और आपसी समायोजन के संदेश को हिंदू मुस्लिम भाई-चारे के लिए इस्तेमाल किया। उनका मशहूर भक्ति गीत रामधुन**ईश्वर अल्लाह तेरे नाम** अब भी हिंदू-मुस्लिम शांति के लिए राष्ट्र का श्रेष्ठ गीत है। यह हमें इस बहस में ले जाता है कि गाँधी जी के लिए शांति का क्या मतलब था। जी हां कोई कह सकता है कि व्यापक तौर पर शांति उनके लिए अपने आप में कोई अंत नहीं था। इसके बजाय यह सिर्फ मानवता का बेहतर कल्याण सुनिश्चित करने के लिए एक माध्यम थी।

वस्तुत: महात्मा गाँधी सत्य के अग्रदूत थे। दरअसल उन्होंने खुद भी कहा था कि सच्चाई शांति की तुलना में ज्यादा महत्वपूर्ण है। इस संदर्भ में यंग इंडिया अखबार में महात्मा गाँधी के निम्नलिखित शब्द उदाहरण के लिए प्रस्तुत किये जाते हैं। जो बिल्कुल प्रासंगिक हैं। महात्मा गाँधी ने लिखा हालाँकि हम भगवान की शान में जोरजोर से गाते हैं और पृथ्वी पर शांत रहने के लिए कहते हैं लेकिन आज न तो भगवान के प्रति वह शान और न ही धरती पर शांति दिखाई देती है। महात्मा गाँधी ने यह शब्द दिसंबर 1931 में लिखे थे। 17 वर्ष बाद जनवरी 1948 में एक क्रूर हत्यारे की गोली से उनका स्वर्गवास हो गया। यह बहुत दर्दनाक था कि सार्वभौमिक शांति और अंहिसा का संत हिंसा और घृणा का शिकार बना। लेकिन2016 के आज के दौर में भी महात्मा गांधी के 1931 के शब्द सत्य हैं।आज दुनिया बहुत से और हर प्रकार के विवादों का सामना कर रही है इसलिए हम देखते हैं कि सार्वभौमिक भाईचारे और शांति और सहअस्तित्व के बारे में गाँधी जी का बल आज भी पूरी तरह प्रासंगिक है। इसलिए उनकी शिक्षाएं आज भी देशभक्ति के सिद्धांत के साथ-साथ विभिन्न वैश्विक विवादों को हल करने या समाप्त करने के मार्ग और माध्यम सुझाती हैं। दरअसल

गाँधी जी की शिक्षाओं का सच्चा प्रमाण इस तथ्य में निहित है कि सिर्फ अच्छाई समाप्त होती है वह बुरे माध्यमों को तर्क संगत नहीं ठहराती है। इसलिए आज दुनियाभर में मानव प्रतिष्ठा और प्राकृतिक न्याय के मूल्य को बनाए रखने पर बल दिया जाता है।

यह स्पष्ट है कि आज की दुनिया में शांति के संकट के सिवा कुछ भी स्थाई नजर नहीं आता है तथा शांति के इस मसीहा को इससे बेहतर श्रद्धांजलि और कुछ नहीं होगी कि शांति और आपसी सहनशीलता के हित में काम किया जाए। यही गाँधीवाद की प्रासंगिकता है।

अंतरराष्ट्रीय अहिंसा दिवस

गाँधीजी के जन्म दिवस को प्रत्येक वर्ष गाँधी जयंती के रूप में मनाया जाता है। भारत के लोग उन्हें प्यार से बापू एवं राष्ट्र पिताके नाम से पुकारते हैं। वे मानवता एवं शांति के प्रतीक हैं।

गांधीजी द्वारा बताई गई कुछ प्रसिद्ध सूक्तियां

"अहिंसा सबसे बड़ा कर्तव्य है। यदि हम इसका पूरा पालन नहीं कर सकते हैं तो हमें इसकी भावना को अवश्य समझना चाहिए और जहां तक संभव हो हिंसा से दूर रहकर मानवता का पालन करना चाहिए।'' "उस प्रकार जिएं कि आपको कल मर जाना है। सीखें उस प्रकार जैसे आपको सदा जीवित रहना हैं।" "आजादी का कोई अर्थ नहीं है यदि इसमें गलतियां करने की आजादी शामिल न हों।"

बेहतर है कि हिंसा की जाए यदि यह हिंसा हमारे दिल में हैं। बजाए इसके कि नपुंसकता को ढकने के लिए अहिंसा का शोर मचाया जाए।''

"आपको मानवता में विश्वास नहीं खोना चाहिए। मानवता एक समुद्र है यदि समुद्र की कुछ बूंदें सूख जाती है तो समुद्र मैला नहीं होता।''

"ईमानदार मतभेद आम तौर पर प्रगति के स्वस्थ संकेत हैं।"

गाँधीजी की नई तालीम बच्चों को उनकी मातृभाषा में पढ़ाने पर बल देती है उनके विचार में बच्चों को उनके घर से दूर करना असली शिक्षा से दूर करना है क्योंकि घर से बड़ा विद्यालय कुछ नहीं है नैतिकता पर बल देते हुए शिक्षा द्वारा सहयोग की भावना और धार्मिक जातिगत भेदभावों तथा द्वेष से दूर रहने की भावना को विकसित करना एक अहम बिंदु है उनके अनुसार शिक्षा कर के देखे अनुभवों के आधार पर आगे बढ़नी चाहिए जिसमें बच्चे को अपनी जिम्मेदारियों का एहसास दिलाया जाए और उसे हर काम को बराबर सम्मान देना सिखाया जाए या कहें कि ऐसा माहौल दिया जाए कि वो ये सारी बातें अमल में लाते हुए शिक्षित हो शिक्षा में रोज़गार पैदा करने का हुनर सिखाया जाए और बच्चों को क्राफ्ट और अन्य तरह के व्यावसायिक हुनर सिखाए जाएँ आज़ादी के बाद तक भी नई तालीम या गाँधीजी के शैक्षिक विचारों को ज़्यादा तरजीह क्यों नहीं मिली यह तो काफी लम्बी चर्चा का विषय है और यहाँ उसकी तह में जाने का प्रयास ना करते हुए उनके विचारों के महत्व को समझने की हल्की सी कोशिश की गई है और विचारों की झलक मात्र दिखाने का लेख में प्रयास किया गया है। गाँधी जी ने हमेशा शिक्षा को शान्ति से जोड़कर देखा शिक्षा जब तक लोगों को समाज के हित में

काम करने और अन्य लोगों के साथ शांति के साथ जीने की सीख ना दे सके तब तक उसमें अधूरापन रहेगा आज कई विद्यालयों में शांतिशिक्षा (पीस एडुकेशन) चलती भी है तो उसे बड़े बड़े संस्थानों यू एन आदि के बारे में और शांति के दार्शनिक तत्वों को बताने तक सीमित कर दिया जाता है पर बच्चों के रोज़मर्रा के जीवन और अपने कार्यों में उसको समाहित करने में कहीं तो कमी ज़रूर है विद्यार्थी पढ़ ज़रूर लेते हैं और बड़ी बड़ी डिग्री भी ले लेते हैं पर सामाजिक सरोकारों से कई बार कटे से रह जाते हैं यही नहीं अपने साथी के साथ कैसे व्यवहार करना है। कैसे सद्भाव और समन्वय के साथ लोगों के साथ रहना है इससे अनजान पढ़े लिखे लोगों के उदाहरण अनेकों मिल जाएँगे बच्चों के अंदर विभिन्न संस्कृतियों के प्रति सम्मान की भावना को आज मुख्य तौर पर जगाने और विकसित करने की ज़रूरत है वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए सही और गलत को पहचानने का जबतक विद्यार्थियों में हुनर विकसित नहीं होगा तब तक शायद शिक्षा का मुख्य उद्देश्य अधूरा ही रहेगा। आज के दौर में हमें नैतिकता को भी नए तरीके से विद्यार्थियों के समक्ष रखना होगा ना कि सिर्फ़ उपदेशों के द्वारा ऐसे कई नये तरीकों को एन सी एफ 2005 के एन. सी. ई. आर. टी. द्वारा निकाले गए शांति के लिए शिक्षा विषय के आधार पत्र फोकस पेपर में जगह दी गई है। हो सकता है आज के दौर में गाँधीजी के कई विचार अप्रासंगिक लगें या उनके व्यक्तित्व के राजनैतिक पहलुओं में हमें खुद की मानसिकता या विचार का मेल ना दिखे फिर भी शिक्षा में दिए गए उनके विचारों को एक बार फिर से समझने और प्रचारित प्रसारित करने की ज़रूरत है अगर कुछ बातें अतिआदर्शवादी या विरोधाभासी भी लगें तो भी एक बार हमें जो भी शिक्षा में कुछ सकारात्मक बदलाव की ललक रखते हैं उनके विचारों को देखना ही चाहिए।

4.4 टैगोर और गांधी

भारत के राष्ट्रीय कवि और साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले प्रथम गैर यूरोपीय गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर और भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी दोनों वैश्विक शांति का समर्थन करते थे। टैगोर जिन्हें महात्मा गांधी और देश के बाकी लोग गुरुदेव या आदरणीय शिक्षक कहते थे। रवींद्रनाथ टैगोर पुनर्जागरण करने वाले व्यक्ति थे और इस तरह के लोग इतिहास में शायद ही कभी पाए जाते हैं। उनके व्यक्तित्व में न केवल उनका समय जिसमें वे रहते थे बल्कि कई जटिल प्रश्न समाहित हैं जो भूगोल के पार जाते हैं और दुनिया भर के सभी देशों और समुदायों के लिए प्रासंगिक हैं। टैगोर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वह सिर्फ एक कवि और लेखक नहीं बल्कि एक संगीतकार चित्रकार दार्शनिक और शिक्षाविद् भी थे। वह ऐसे समय में हमारे देश के एक सही राजदूत थे जब बाहर की दुनिया में भारत के बारे में बहुत कम जानकारी थी। अपने पूरे जीवन वह मानवता के सार्वभौमिक मूल्यों को प्रतिबिंबित करने वाली संस्कृतियों और साहित्य के बारे में ज्ञान के आदान-प्रदान के माध्यम से सभ्यताओं के बीच संवाद के विचार के प्रति आकर्षित थे। जाति सम्प्रदाय और

वर्ण की बेड़ियों में जकड़ी दुनिया में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने विविधता खुलेपन सहिष्णुता और सहअस्तित्व पर आधारित एक नई विश्व व्यवस्था के लिए अंतरराष्ट्रीयता को बढ़ावा दिया। उन्होंने सत्य और सद्भाव के धर्म और प्रेम और करुणा का उपदेश देते हुए व्यापक यात्रा की। राष्ट्रवाद पर टैगोर के विचार संकीर्णता जातीय विभाजन और सामाजिक स्तरीकरण के प्रति उनकी अरुचि प्रकट करते हैं। उनका दृढ़ विश्वास था कि जब तक बड़े और शक्तिशाली राष्ट्र क्षेत्रीय विस्तार और छोटे देशों पर नियंत्रण की अपनी इच्छा को नहीं रोकते तब तक विश्व शांति हासिल नहीं की जा सकती है। उनके विचार में युद्ध 20वीं सदी के प्रारंभ में आध्यात्मिकता रहित विज्ञान के साथ विकसित आक्रामक पश्चिमी भौतिकवाद का एक परिणाम था। कवि के अनुसार पूर्व और पश्चिम को एक साझा धरातल पर और समान साहचर्य के आधार पर मिलना चाहिए। जहां ज्ञान की दो धाराएं बहती है और उनकी एकता में सत्य के खुलेपन को महसूस किया जाता है जो पूरे ब्रह्मांड में व्याप्त है और इसे बनाए रखता है। उन्होंने सारगर्भित ढंग से कहा यह दुनिया अलेक्जेंडर ने नहीं बुद्ध ने जीती।

यदि टैगोर वैश्विक शांति के बौद्धिक और आध्यात्मिक मशाल वाहक थे तो वह महात्मा थे जिन्होंने दुनिया को दर्शाया कि सत्याग्रह या सत्य की शक्ति और अहिंसा के जरिये दुनिया को और भी अधिक उचित बनाया जा सकता है। महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में हिंसा के खिलाफ सत्य के उपयोग के साथ अपने प्रयोगों की शुरुआत की और फिर भारत में इसे ऐसे शांति आंदोलन के रूप में विकसित किया जिसे दुनिया ने कभी नहीं देखा था। इस आंदोलन से न केवल भारत को स्वतंत्रता मिली बल्कि दुनिया भर में उपनिवेशवाद के अंत की शुरुआत हुई। आपको यह सूचित करते हुए मुझे हर्ष हो रहा है कि इस वर्ष 09 जनवरी को भारत में हमने दक्षिण अफ्रीका से गांधी जी की वापसी का एक सौवां साल मनाया।

हमारी पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने गांधी जी के लेखन के स्मारकीय संकलन के 90 वें खंड कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी के प्राक्कथन में इन शब्दों के महत्व का उल्लेख किया। उन्होंने लिखा वह उन लोगों में से थे जो जैसा सोचते थे वैसा बोलते थे और जैसा बोलते थे वैसा करते थे। वह उन कुछ लोगों में से थे जिनके वचन और कर्म के बीच कोई छाया नहीं थी। उनके वचन उनके कर्म थे और इन वचनों ने एक आंदोलन और एक राष्ट्र का निर्माण किया और अनगिनत लोगों जीवन बदल दी। छाया क्या थी जिसकी बात प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी कर रही थी यह छाया असत्य और झूठ का था। जो व्यक्ति सत्य को ईश्वर मानता है वही जीवन को एक संदेश के रूप में व्यक्त कर सकता है। अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी का मानवतावाद और मस्तिष्क के खुलेपन में वही गहरा विश्वास था जो टैगोर का था। उन्होंने कहा मैं नहीं चाहता कि मेरे घर के चारों ओर दीवार हो और खिड़कियां बंद हों। मैं चाहता हूं कि सभी देशों की संस्कृतियों की हवा यथासंभव मुक्त रूप में मेरे घर से होकर गुजरे। लेकिन मैं नहीं चाहता कि किसी भी संस्कृति की हवा से मेरे पैर उखड़ जाएं। मैं एक अन्तःप्रवेष्टा एक भिखारी या एक गुलाम के रूप में अन्य लोगों के घरों में रहने से इनकार करता हूं।

टैगोर के समान गांधीजी का भी प्रकृति के साथ एक स्थायी सरोकार और प्रकृति के साथ एक जटिल अंतरंग और सौहार्दपूर्ण संबंध में मानव चेतना का अद्वितीय स्थान था। गांधी जी ने एक और महत्वपूर्ण संदेश दिया कि अर्थशास्त्र नैतिकता के बिना किसी काम का नहीं है। यह सरल निषेध एक नैतिक ढांचा का निर्माण करता है जिसके भीतर मानव प्रतिभा को काम करना होता है। मानव लालच की सीमा भीतरी अनिवार्यताओं द्वारा परिभाषित की जानी चाहिए न कि बाहरी बाधाओं से। यह आंतरिक अनिवार्यता जिसे उन्होंने खूबसूरती के साथ छोटी सी आवाज कहा हम सभी के लिए उपलब्ध है यदि हम इसे सुनने और इसके निर्देशों का पालन करने की क्षमता का निर्माण करें।

अर्थशास्त्र के केंद्र में नैतिकता को रखकर गांधी जी ने हमें एक विचार दिया जिसका महत्व कालातीत है। यह विश्वास पर आधारित न्यासिता का विचार है जो अनोखी मानवीय क्षमता है। हम सभी विश्वास के माध्यम से और विश्वास के द्वारा रहते हैं। गांधीजी ने हम सभी को ट्रस्टी बनने और अपने हृदय की अच्छाई और दूसरों के हृदयों की अच्छाई में विश्वास रखने कहा। यह अच्छाई हमें उन सभी का ट्रस्टी बनने में सक्षम बनाती है जो हमारा और दूसरों दोनों का है। महात्मा गांधी जी के लिए अहिंसा सिर्फ एक विधिया एक साधन नहीं थी। इसके लिए हमें जो चुनौती देने की तलाश में हैं उन लोगों की मानवता सहित अन्य लोगों की मानवता को स्वीकार करने की आवश्यकता है। अहिंसा इस विचार पर आधारित है कि दूसरे भी सत्य को पहचानने और इसकी राह पर चलने में सक्षम हैं। हालांकि वे अल्पावधि में कितने भी गुमराह या यहां तक कि दमनकारी हो सकते हैं। अहिंसा सिर्फ दूसरों को चोट पहुंचाना नहीं है। यह एक सक्रिय शक्ति है जो दूसरों को गले लगाती है और मैं और तुम के बीच के अंतर को समाप्त करती है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर और गांधी जी दोनों मानते थे कि अहिंसा के प्रयोग से अंततरू अन्यायी और दमनकारी दूसरों पर अन्याय और दमन करने की आवश्यकता और इच्छा से मुक्त हो जाएंगे। यह इतिहास में कम ही होता है कि दो दार्शनिकए दो व्यक्ति जो न केवल अपने समय बल्कि आने वाली पीढियों को भी संबोधित करने में सक्षम हों गहन संवाद के साथ काम करते हों। कवि टैगोर और महात्मा गांधी की एक साथ उपस्थिति आधुनिक भारत के लिए अनोखा वरदान था और हम मानते हैं कि यह सौभाग्य हमारे ऊपर विशेष दायित्व लाता है कि हम विभिन्न धर्मों मतों संस्कृतियों और सभ्यताओं के बीच संवाद के संवर्धन में सक्रिय रूप से शामिल हों।

रवीन्द्रनाथ का शिक्षा दर्शन

शिक्षाशास्त्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करना चाहते थे। उनके सभी शिक्षा सिद्धांत विश्व बन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत हैं। रवीन्द्रनाथ का कहना था शिक्षा मस्तिष्क को अंतिम सत्य को पाने योग्य बनाती है। वह हमें धूल के बंधन से मुक्ति दिलाती है और हमें वस्तु निधि अथवा शक्तिनिधि की अपेक्षा आंतरिक ज्योति एवं प्रेम प्रदान करती है वह सत्य को अपना बनाती है और इसे अभिव्यक्ति देती है। शिक्षा दर्शन के तीन तत्व है 1. प्रकृतिवाद 2.

मानवतावाद 3. विश्वबन्धुत्व। उन्होंने शिक्षा को दो ध्रुव माना है 1. शिक्षक 2 .छात्र। इन दोनों के बीच पिता पुत्र का सम्बंध होना चाहिए। इस कारण शांति निकेतन को आवासीय रखा गया था।

प्रकृतिवाद रवीन्द्रनाथ जी की दृष्टि में प्रकृति और मानव के बीच गहरा सम्बंध है दोनों एक-दूसरे से बँधे हुए हैं। इस कारण बच्चों को प्राकृतिक वातावरण में शिक्षा देना चाहिए। इस स्वाभाविक वातावरण में शिक्षित हुए छात्र प्रकृति से शुध्द और सरलता से रागात्मक सम्बंध स्थापित कर लेते हैं। ये बच्चे अपने जीवन और पूरे विश्व के समाज में सामंजस्य स्थापित कर लेते है। प्राकृतिक वातावरण की शुध्द वायु मन और शरीर दोनों को शक्ति प्रदान करती है। प्रकृति मानव को आने वाले जीवन के लिए तैयार करती है। व्यक्ति का विकास उसकी रुचि और प्रकृति के अनुसार होता है। इनका कहना था कि प्रकृतिवाद में आध्यात्मवाद है और इसका विकास संगीत से होता है। इसी सोच के अनुसार शांति निकेतन तैयार हुआ है। जहां आम्रकुंजों की सघन छाया में शिक्षा होती है और कोयल बुलबुल की मधुर आवाज गूंजते रहती है।

मानवतावाद- रवीन्द्रनाथ जी मानव को ऊंचे स्थान पर देखते थे और मानव में ही ईश्वर का वास मानते थे। वे पूरे मानव समाज को एक मानते थे। वे मानवतावादी थे और पूरे जीवन उन्होंने मानव की सेवा की। मानव सेवा से ही जीवन सार्थक होता है ऐसी उनकी सोच थी। वे श्रमजीवियों को ईश्वर मानते थे। वे बच्चों को भी ईश्वर मानते थे। बच्चों को प्यार करने की बात करते थे। परम्परागत शिक्षा पध्दति के विरोधी रहे। बंद कमरों में बच्चों की शिक्षा जहां उनका दम घुटता हो उसके विरोधी रहे। दण्ड प्रावधान और कड़ा अनुशासन पसंद नहीं था। टेबल कुर्सी पढ़ाई में बनावटीपन लाता है जो वातावरण को बोझिल करता है। वे इन सबसे दूर स्वाभाविक वातावरण में बच्चों का विकास चाहते थे। विश्व बन्धुत्व रवीन्द्रनाथ जी का मानवतावादी सीमाहीन था। उनका मानव जाति धर्म भाषाए रंग एवं सीमा से दूर था। समस्त मानवता की एकता को उन्होंने शांति निकेतन और विश्वभारती में जीवन प्रस्तुत किया। वे विश्व बंधुत्व के पोषक थे। वे विश्व की समस्त संस्कृतियों को सुन्दर मानते थे। उनके लिए सभी की संस्कृति महत्वपूर्ण थी। पूर्व और पश्चिम की सभ्यता को वे एक ही मानते थे। उनकी शिक्षा विश्वबंधुत्व का संदेश देती है। अध्यात्म और मानवीय आस्था का समन्वय यहाँ दिखाई देता है। उन्होंने विश्व की समस्त संस्कृतियों को शिक्षा के द्वारा मिलाने का प्रयास किया है। उन्मुक्त वातावरण में संगीत कला व्यायाम की शिक्षा दी जाती है। यह पाठयक्रम का एक हिस्सा है। उन्होंने नये और प्रगतिशील दृष्टिकोण शिक्षा जगत को दिया।

गुरुदेव की शिक्षण पध्दति- शिक्षण विधियां रवीन्द्रनाथ प्रकृतिवादी थे। वे मुक्त वातावरण में बच्चों का सर्वांगीण विकास चाहते थे। उनका कहना था कि शिक्षक का कर्तव्य है मुक्त और स्वाभाविक वातावरण का निर्माण करना। उनका विश्वास था कि मानव शिशु में अपार सम्भावनाएं एवं अपार शक्ति होती है। बच्चों ने स्वाभाविक विकास के लिए ही शांति निकेतन और विश्वभारती की स्थापना हुई थी। शांति निकेतन आवासीय है क्योंकि छात्र एवं शिक्षक के बीच पिता पुत्र की तरह सम्बंध हो।

शिक्षक का जीवन सादा हो आचरण शुध्द हो चरित्रवान हो अध्ययनशील परिश्रमी उदार ममतावान हो तब बच्चों पर इसका प्रभाव अच्छा पड़ेगा। नैतिक शिक्षा धर्म और नैतिकता का सम्बंध मानव के व्यवहारिक जीवन से है। इस कारण विश्व भारती में सभी धर्मों और संस्कृतियों के छात्रों को अपने धर्म एवं संस्कृति के पालन की पूर्ण स्वतंत्रता है। सभी एक दूसरे के धार्मिक सांस्कृतिक अनुष्ठानों में उत्साहपूर्वक भाग लेते है। इससे विश्वबंधुत्व की भावना विकसित होती है। उदारता एवं एक ईश्वर का दृष्टिकोण विकसित होता है। यह कहने की बात नहीं है कि रवींद्रनाथ टैगोर ने अपने जीवनसत्यों की तलाश कर ली थी और मूल सत्य यह था कि उनका भविष्य अपने देश में रहने अपने लोगों की बेहतरी और जीवन विकास में निहित है इसके लिए वे वर्तमान शिक्षा प्रणाली के तौर-तरीकों में अहम बदलाव की जरूरत समझते थे इसी जिद और आग्रह के तहत उन्होंने शांतिनिकेतन की स्थापना की और अपने नोबेल पुरस्कार की सारी राशि शांतिनिकेतन की बेहतरी के लिए दान कर दी थी शांतिनिकेतन से रवींद्रनाथ टैगोर के इसी लगाव के कारण महात्मा गांधी ने उन्हें गुरुदेव यानी गुरुओं के गुरु या आराध्य की उपाधि दी थी शांतिनिकेतन की स्थापना के पीछे टैगोर का एक मकसद यह भी था कि वे किसानों-काश्तकारों के जीवन में फैले अशिक्षा के अंधकार को इस संस्थान से दूर करें गांव के जीवन को उन्होंने बहुत करीब से देखा था और तब उन्होंने यह महसूस किया कि देश के विकास के लिए पहले इन गरीब किसानों का विकास बहुत जरूरी है यही सोचकर उन्होंने तय किया था कि शांतिनिकेतन कोलकाता से 160 किमी दूर उत्तर में स्थित शहर में जो उनकी थोड़ी-बहुत जमीन है उसपर वे इनकी शिक्षा के लिए एक स्कूल खोलेंगे पत्नी से वे जब यह मशविरा करने पहुंचे तो स्कूल खोलने के उनके इस विचार पर वे तुरंत हंस पड़ी थीं उन्हें आश्चर्य यह था कि स्कूली शिक्षा से कभी हद दर्जे तक भागनेवाला एक बच्चा आज स्कूल की स्थापना की बात कर रहा था टैगोर ने उनकी इस जिज्ञासा और हंसी को शांत करने के लिए यह कहा कि वे उन स्कूलों जैसा स्कूल नहीं खोलने वाले जहां बंद कोठरियों और कमरों में छड़ी के दम पर बच्चों को सबक रटाएं जाते हैं। शांतिनिकेतन वृक्षों के साए तले खुले में व्यवहारिक शिक्षा देनेवाला पहला स्कूल होगा। 1907 में जब शांति निकेतन की स्थापना हुई तो टैगोर के मन में यह सजग इच्छा थी कि यहां का माहौल ऐसा हो जिसमें शिक्षक विद्यार्थी के बीच कोई दीवार न हो उम्र और पदवी को भूलकर सब एक साथ मिलकर काम कर सकें, जहां शिक्षा का मतलब किताबों में सिमटना कहीं से भी न हो शांतिनिकेतन के माध्यम से उन्होंने इस विचार को अमली जामा भी पहना दिया था। यही शांतिनिकेतन 1921 में विश्वभारती बन गया।

विभिन्न विद्वानों की दृष्टि में टैगोर-

“He was far rather spiritual leader. The poet was also seer.”

"Tagore is one of the philosophers who were great poets and he is one of the few poets that have themselves gives expression to their philosophy." —P.T. Raju

"Tagore was the greatest prophet of educational renaissance in modern India.

—H.B. Mukherjee

"Tagore revolutionized ideals of education without breaking with tradition."

—Humayun Kabir

The unfolding of the petals which implies distinctness, so the v rose of humanity is perfect only when the divers races and nations have developed their distinct characteristics to perfection yet all remain attached to the stem of humanity by the band of brotherhood."

अपनी एक कविता में उन्होंने कहा था:

"Let the promises and hopes.
The deeds and words of my country be true, my God."
'Keep watch India'

उन्होंने कहा था:

"Come with thy treasure of contentment,
The sword of fortitude and meekness crowning thy forehead."

अपने जीवन के अंतिम श्वास तक यह महापुरुष सामाजिक एकता और विश्व शांति स्थापना के लिए प्रयत्नशील रहा जो सांस्कृतिक आदान-प्रदान और मानव एकता से प्राप्त हो सकती है। महर्षि टैगोर का विश्वास था कि मानव जाति अपने को विनाश से तभी बचा सकती है जब वह पुन: उस आध्यात्मिकता में वापस आए जो संपूर्ण धर्म का प्राथमिक आधार है। विवेकानंद की भांति वे सोचते थे भारत विश्व का पथ-प्रदर्शक मात्र नहीं वरन् उसे भी विश्व से बहुत कुछ प्राप्त करना है। वे ऐसे आधुनिक विश्व का निर्माण करना चाहते थे जो सुखमय और नवीन हो और जिसका आधार प्राचीनता हो।

4.5 शिक्षा के संदर्भ में महर्षि अरविन्द के विचार

श्री अरविन्द ने भारतीय शिक्षा चिन्तन में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उन्होंने सर्वप्रथम घोषणा की कि मानव सांसारिक जीवन में भी दैवी शक्ति प्राप्त कर सकता है। आज की परिस्थितियों में जब हम अपनी प्राचीन सभ्यताए संस्कृति एवं परम्परा को भूल कर भौतिकवादी सभ्यता का अंधानुकरण कर रहे हैं। अरविन्द का शिक्षा दर्शन हमें सही दिशा का निर्देश करता है। आज धार्मिक एवं अध्यात्मिक

जागृति की नितान्त आवश्यकता है। श्री वी आर तनेजा के शब्दों में- श्री अरविन्द का शिक्षा-दर्शन लक्ष्य की दृष्टि से आदर्शवादी उपागम की दृष्टि से यथार्थवादी क्रिया की दृष्टि से प्रयोजनवादी तथा महत्त्वाकांक्षा की दृष्टि से मानवतावादी है। हमें इस दृष्टिकोण को शिक्षा में अपनाना चाहिए। जेल की अवधि में श्री अरविन्द ने आध्यात्मिक साधना की तथा उन्हें ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हुआ। इसके पूर्व वे १९०७ ई में जब बड़ौदा में थे तो एक प्रसिद्ध योगी विष्णु भास्कर लेले के संपर्क में आये और योग-साधना में प्रवृत्त हुए। जेल से मुक्त होकर वे ४ अप्रैल १९१० को पांडिचेरी चले गये और उन्होंने अपना जीवन अनन्त सत्य की खोज में लगा दिया। सतत् साधना द्वारा उन्होंने अपनी आध्यामिक दार्शनिक विचारधारा का विकास किया। श्री अरविन्द के दार्शन का लक्ष्य उदात्त सत्य का ज्ञान है जो समग्र जीवन-दृष्टि द्वारा प्राप्त होता है। समग्र जीवन-दृष्टि मानव के ब्रह्म में लीन या एकाकार होने पर विकसित होती है। ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण द्वारा मानव अति मानव बन जाता है अर्थात् वह सत रज व तम की प्रवृत्ति से ऊपर उठकर ज्ञानी बन जाता है। अतिमानव की स्थिति में व्यक्ति सभी प्राणियों को अपना ही रूप समझता है। जब व्यक्ति शारीरिक मानसिक तथा आत्मिक दृष्टि से एकाकार हो जाता है तो उसमें दैवी शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। समग्र जीवन.दृष्टि हेतु अरविन्द ने योगाभ्यास पर अधिक बल दिया है। योग द्वारा मानसिक शांति एवं संतोष प्राप्त होता है। अरविन्द की दृष्टि में योग का अर्थ जीवन को त्यागना नहीं है बल्कि दैवी शक्ति पर विश्वास रखते हुए जीवन की समस्याओं एवं चुनौतियों का साहस से सामना करना है। अरविन्द की दृष्टि में योग कठिन आसन व प्राणायाम का अभ्यास करना भी नहीं है बल्कि ईश्वर के प्रति निष्काम भाव से आत्म समर्पण करना तथा मानसिक शिक्षा द्वारा स्वयं को दैवी स्वरूप में परिणित करना है। अरविन्द ने मस्तिष्क की धारणा स्पष्ट करते हुए कहा है कि मस्तिष्क के विचार-स्तर चित्त मनस बुद्धि तथा अन्तर्ज्ञानहोते हैं जिनका क्रमशरू विकास होता है। अन्तर्ज्ञान में व्यक्ति को अज्ञान से संदेश प्राप्त होते हैं जो ब्रह्म ज्ञान के आरम्भ की परिचायक है। अरविन्द ने अन्तर्ज्ञान को विशेष महत्त्व दिया है। अन्तर्ज्ञान द्वारा ही मानवता प्रगति की वर्तमान दशा को पहुँची है। वर्तमान शिक्षा पद्धति से अरविन्द का असंतोष इसी कारण था कि उनमें विद्यार्थियों की प्रतिभा के विकास का अवसर नहीं दिया जाता। शिक्षक को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विद्यार्थियों की प्रतिभा के विकास हेतु उनके प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। अतिमानस चेतना का उच्च स्तर है तथा दैवी आत्म शक्ति का रूप है। अतिमानस की स्थिति तक शनै: शनै: पहुँचना ही शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए। अरविन्द के अनुसार भारतीय प्रतिभा की तीन विशेषताएँ हैं- आत्मज्ञान, सृर्जनात्मकता तथा बुद्धिमत्ता। अरविन्द ने देशवासियों में इन्हीं प्राचीन आध्यात्मिक शक्तियों के विकास करने का संदेश देकर भारतीय पुनर्जागरण करना चाहा है। अरविन्द के शब्दों में- भारतीय आध्यात्मिक ज्ञान जैसी उत्कृष्ट उपलब्धि बगैर उच्च कोटि के अनुशासन के अभाव में संभव नहीं हो सकती जिसमें कि आत्मा व मस्तिष्क की पूर्ण शिक्षा निहित है।

श्री अरविंद के अनुसार शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य विकासशील आत्मा के सर्वांगीण विकास में सहायक होना तथा उसे उच्च आदर्शों के लिए प्रयोग हेतु सक्षम बनाना हैं। अरविंद के विचार महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के लक्ष्यों के समान हैं। अरविंद की धारणा थी कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में यह विश्वास जागृत करना है कि मानसिक तथा आत्मिक दृष्टि से पूर्ण सक्षम है तथा वह शनै: शनै: अतिमानव की स्थिति में आ रहा है। शिक्षा द्वारा व्यक्ति की अन्तर्निहित बौद्धिक एवं नैतिक क्षमताओं का सर्वोच्च विकास होना चाहिए। अरविंद का विश्वास था कि मानव दैवी शक्ति से समन्वित है और शिक्षा का लक्ष्य इस चेतना शक्ति का विकास करना है। इसीलिए वे मस्तिष्क को छठी ज्ञानेन्द्रिय मानते थे। शिक्षा का प्रयोजन इन छ: ज्ञानेन्द्रियों का सदुपयोग करना सिखाना होना चाहिए। उन्होंने कहा था कि मस्तिष्क का उच्चतम सीमा तक पूर्ण प्रशिक्षण होना चाहिए अन्यथा बालक अपूर्ण तथा एकांगी रह जायेगा। अतर :शिक्षा का लक्ष्य मानव-व्यक्तित्व के समेकित विकास हेतु अतिमानस का उपयोग करना है।

नैतिक शिक्षा - अरविन्द बालक के बौद्धिक विकास के साथ उसका नैतिक एवं धार्मिक विकास भी करना चाहते थे। उनकी धारणा थीमा-नव की मानसिक प्रवृत्ति नैतिक प्रवृति पर आधारित है। बौद्धिक शिक्षा जो नैतिक व भावनात्मक प्रगति से रहित हो मानव के लिए हानिकारक है। नैतिक शिक्षा हेतु अरविन्दगुरु की प्राचीन भारतीय परंपरा के पक्षधर थे जिसमें गुरु शिष्य का मित्र पथ प्रदर्शक तथा सहायक हो सकता था। अनुशासन द्वारा ही विद्यार्थियों में अच्छी आदतों का निर्माण हो सकता है।

4.6 शांति शिक्षा के संदर्भ में जे. कृष्णमूर्ति के विचार

कृष्णमूर्ति एक विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक तथा आध्यात्मिक विषयों के बड़े ही कुशल एवं परिपक्व लेखक थे। इन्हें प्रवचनकर्ता के रूप में भी ख्याति प्राप्त थी। जे. कृष्णमूर्ति मानसिक क्रान्ति बुद्धि की प्रकृति ध्यान और समाज में सकारात्मक परिवर्तन किस प्रकार लाया जा सकता है इन विषयों आदि के बहुत ही गहरे विशेषज्ञ थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि सत्य एक मार्गरहित भूमि है और उस तक किसी भी औपचारिक धर्म, दर्शन अथवा संप्रदाय के माध्यम से नहीं पहुंचा जा सकता। कृष्णमूर्ति के विचारों के जन्म को उसी तरह माना जाता है जिस तरह की एटम बम का अविष्कार के होने को। कृष्णमूर्ति अनेकों बुद्धिजीवियों के लिए रहस्यमय व्यक्ति तो थे ही साथ ही उनके कारण विश्व में जो बौद्धिक विस्फोट हुआ है उसने अनेकों विचारकों साहित्यकारों और राजनीतिज्ञों को अपनी जद में ले लिया। उनके बाद विचारों का अंत होता है। उनके बाद सिर्फ विस्तार की ही बातें है। 1927 में एनी बेसेंट ने उन्हें विश्व गुरु घोषित किया। किन्तु दो वर्ष बाद ही कृष्णमूर्ति ने थियोसोफ़िकल विचारधारा से नाता तोड़कर अपने नये दृष्टिकोण का प्रतिपादन आरम्भ कर दिया। अब उन्होंने अपने स्वतंत्र विचार देने शुरू कर दिये। उनका कहना था कि व्यक्तित्व के पूर्ण रूपान्तरण से ही विश्व से संघर्ष और पीड़ा को मिटाया जा सकता है। हम अन्दर से अतीत का बोझ और भविष्य

का भय हटा दें और अपने मस्तिष्क को मुक्त रखें। उन्होंने आर्डर ऑफ़ द स्टार को भंग करते हुए कहा कि अब से कृपा करके याद रखें कि मेरा कोई शिष्य नहीं हैं क्योंकि गुरु तो सच को दबाते हैं। सच तो स्वयं तुम्हारे भीतर है। सच को ढूँढने के लिए मनुष्य को सभी बंधनों से स्वतंत्र होना आवश्यक है। कृष्णमूर्ति ने बड़ी ही फुर्ती और जीवटता से लगातार दुनिया के अनेकों भागों में भ्रमण किया और लोगों को शिक्षा दी और लोगों से शिक्षा ली। उन्होंने पूरा जीवन एक शिक्षक और छात्र की तरह बिताया। मनुष्य के सर्वप्रथम मनुष्य होने से ही मुक्ति की शुरुआत होती है किंतु आज का मानव हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, मुस्लिम, अमेरिकी या अरबी है। उन्होंने कहा था कि संसार विनाश की राह पर आ चुका है और इसका हल तथाकथित धार्मिकों और राजनीतिज्ञों के पास नहीं है।

गंगा बस उतनी नहीं है जो ऊपर-ऊपर हमें नज़र आती है। गंगा तो पूरी की पूरी नदी है शुरू से आखिर तक जहां से उद्गम होता है उस जगह से वहां तक जहां यह सागर से एक हो जाती है। सिर्फ सतह पर जो पानी दीख रहा है वही गंगा है यह सोचना तो नासमझी होगी। ठीक इसी तरह से हमारे होने में भी कई चीजें शामिल हैं और सूक्ष, इरादे, हमारे अंदाजे विश्वास पूजा-पाठ मंत्र सब के सब तो सतह पर ही हैं। इनकी हमें जाँच-परख करनी होगी और तब इनसे मुक्त हो जाना होगा इन सबसे सिर्फ उन एक या दो विचारों एक या दो विधि-विधानों से ही नहीं जिन्हें हम पसंद नहीं करते।

जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार दुनिया को बेहतर बनाने के लिए जरूरी है यथार्थवादी और स्पष्ट मार्ग पर चलना। आपके भीतर कुछ भी नहीं होना चाहिए तब आप एक साफ और सुस्पष्ट आकाश होने के लिए तैयार हो। धरती का हिस्सा नहीं आप स्वयं आकाश हैं। जे. कृष्णमूर्ति का कहना है कि यदि आप कुछ भी है तो फिर आप कुछ नहीं। कृष्णमूर्ति की शिक्षा जो उनके गहरे ध्यान सही ज्ञान और श्रेष्ठ व्यवहार की उपज है ने दुनिया के तमाम दार्शनिकों धार्मिकों और मनोवैज्ञानिकों को प्रभावित किया। उनका कहना था कि आपने जो कुछ भी परम्पराए देश और काल से जाना है उससे मुक्त होकर ही आप सच्चे अर्थों में मानव बन पाएँगे। जीवन का परिवर्तन सिर्फ इसी बोध में निहित है कि आप स्वतंत्र रूप से सोचते हैं कि नहीं और आप अपनी सोच पर ध्यान देते हैं कि नहीं। उन्होंने आर्डर ऑफ दि स्टार को भंग करते हुए कहा कि अब से कृपा करके याद रखें कि मेरा कोई शिष्य नहीं हैं क्योंकि गुरु तो सच को दबाते हैं। सच तो स्वयं तुम्हारे भीतर है। सच को ढूँढने के लिए मनुष्य को सभी बंधनों से स्वतंत्र होना आवश्यक है।

जे. कृष्णमूर्ति अपने वार्ताओं तथा विचार विमर्शों के माध्यम से अपनी शिक्षाओं को बच्चों तक पहुंचाते हैं। क्योंकि मानव-मन के मूलभूत परिवर्तनों से तथा एक नवीन संस्कृति के सर्जन में जो केंद्रीभूत है। उसके सम्प्रेषण के लिए शिक्षा को कृष्णमूर्ति प्राथमिक महत्व का मानते हैं। ऐसा मौलिक परिवर्तन तभी संभव होता है जब बच्चों की विभिन्न प्रकार की कार्यकुशलता तथा विषयों का प्रशिक्षण देने के साथ-साथ उसे स्वयं अपनी विचारणा तथा क्रियाशीलता के प्रति जागरूक होने की क्षमता भी प्रदान की जाती है। यह जागरूकता बच्चों के अंदर मनुष्य के साथ प्रकृति के साथ तथा

मानवनिर्मित यंत्रों के साथ सही संबंध को परिपक्व करने के लिए अत्यंत आवश्यक है। कृष्णमूर्ति आंतरिक अनुशासन पर बल देते हैं। बाह्य अनुशासन मन को मूर्ख बना देता है यह आप में अनुकूलता और नकल करने की प्रवृत्ति लाता है। परंतु यदि आप अवलोकन के द्वारा सुन करके दूसरों की सुविधाओं का ध्यान करके विचार के द्वारा अपने को अनुशासित करते हैं तो इससे व्यवस्था आती है। जहां व्यवस्था होती है वहां स्वतंत्रता सदैव रहती है। यदि आप ऐसा करने में स्वतंत्र नहीं है तो आप व्यवस्था नहीं कर सकते। व्यवस्था ही अनुशासन है। जे. कृष्णमूर्ति अपने शैक्षिक विचारों के माध्यम से शिक्षक और शिक्षार्थी को यह उत्तरदायित्व सौंपते हैं कि वे एक अच्छे समाज का निर्माण करें जिसमें सभी मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक जी सकें शांति और सुरक्षा में हिंसा के बिना। क्योंकि आज के विद्यार्थी ही कल के भविष्य हैं।

जे. कृष्णमूर्ति के मौलिक दर्शन ने पारंपरिक गैरपरंपरावादी विचारकों दार्शनिकों शीर्ष शासन संस्था प्रमुखों भौतिक और मनोवैज्ञानियों और सभी धर्म सत्य और यथार्थपरक जीवन में प्रवृत्त सुधिजनों को आर्कर्षित किया और उनकी स्पष्ट दृष्टि से सभी आलोकित हुए हैं। जे. कृष्णमूर्ति ने स्वयं तथा उनकी शिक्षाओं को महिमा मंडित होने से बचाने और उनकी शिक्षाओं की व्याख्या की जाकर विकृत होने से बचाने के लिए अमरीका भारत इंग्लैंड कनाडा और स्पेन में फाउण्डेशन स्थापित किये। भारत इंग्लैण्ड और अमरीका में विद्यालय भी स्थापित किये जिनके बारे में उनका दृष्टिबोध था कि शिक्षा में केवल शास्त्रीय बौद्धिक कौशल ही नहीं वरन मनमस्तिष्क को समझने पर भी जोर दिया जाना चाहिये। जीवन यापन और तकनीकी कुशलता के अतिरिक्त जीने की कला कुशलता भी सिखाई जानी चाहिए। उन्होंने हमेशा इस बात पर जोर दिया कि मनुष्य की वैयक्तिक और सामाजिक चेतना दो भिन्न चीजें नहीं पिण्ड में ही ब्रम्हांड है इस को समझाया। उन्होंने बताया कि वास्तव में हमारी भीतर ही पूरी मानव जाति पूरा विश्व प्रतिबिम्बित है। प्रकृति और परिवेश से मनुष्य के गहरे रिश्ते और प्रकृति और परिवेश से अखण्डता की बात की। उनकी दृष्टि मानव निर्मित सारे बंटवारोंदीवारों विश्वासों दृष्टिकोणों से परे जाकर सनातन विचार के तल पर क्षणमात्र में जीने का बोध देती है।

कृष्णमूर्ति ने धर्म अध्याय दर्शन मनोविज्ञान व शिक्षा को अपनी अंतदृर्ष्टि के माध्यम से नये आयाम दिए। छः दशकों से भी अधिक समय तक विश्व के विभिन्न भागों में अलग-अलग पृष्ठभूमियों से आए श्रोताओं के विशाल समूह कृष्णमूर्ति के व्यक्तित्व तथा वचनों की ओर आकर्षित होते रहे पर वे किसी के गुरु नहीं थे। अपने ही शब्दों में वे तो बस एक दर्पण थे जिसमें इंसान खुद को देख सकता है। वे किसी समूह के नहीं सच्चे अर्थों में समस्त मानवता के मित्र थे।

आज के महानगरीय मशीनीकरण युग में प्रचलित प्रारूप असफल हो गये हैं तथा मनुष्य के और उसके जटिल एवं सामयिक समाज के बीच कोई सार्थक संबंध नहीं रह गया। परिवेशसंबंधी संकट तथा निरंतर बढ़ती हुई निर्धनता भूख और हिंसा मनुष्य को बाध्य कर रही है कि वह इस मानवस्थिति

की वास्तविकता का साक्षात करे। ऐसे समय में शिक्षा की आधारभूत धारणाओं के प्रति एक पूर्णतया नवीन दृष्टिकोण आवश्यक है। इस नवीन दृष्टिकोण की आवश्यकता केवल शिक्षा संरचना के प्रति ही नहीं है वरन् मनुष्य के मन उसके जीवन के स्वरूप तथा उसकी विशेषता के प्रति भी है। इसलिए कृष्णमूर्ति अपनी शिक्षाओं के माध्यम से विशिष्ट संस्कृतियों की सीमाओं को तोड़ते हुए पूर्णतया उस नवीन मूल्यों को स्थापित करते हैं जो एक नवीन सभ्यता का तथा एक नवीन समाज का सर्जन कर सकते हैं।

जे. कृष्णमूर्ति अपने वार्ताओं तथा विचार विमर्शों के माध्यम से अपनी शिक्षाओं को बच्चों तक पहुंचाते हैं। क्योंकि मानव-मन के मूलभूत परिवर्तनों से तथा एक नवीन संस्कृति के सर्जन में जो केंन्द्रीभूत है उसके सम्प्रेषण के लिए शिक्षा को कृष्णमूर्ति प्राथमिक महत्व का मानते हैं। ऐसा मौलिक परिवर्तन तभी संभव होता है जब बच्चों की विभिन्न प्रकार की कार्यकुशलता तथा विषयों का प्रशिक्षण देने के साथ-साथ उसे स्वयं अपनी विचारणा तथा क्रियाशीलता के प्रति जागरूक होने की क्षमता भी प्रदान की जाती है। यह जागरूकता बच्चों के अंदर मनुष्य के साथ प्रकृति के साथ तथा मानव-निर्मित यंत्रों के साथ सही संबंध को परिपक्व करने के लिए अत्यंत आवश्यक है। आज का युग टेक्नोलॉजी का युग है। छात्रों के साथ-साथ अभिभावक भी परीक्षाओं पर टेक्नीकल ज्ञान की सूचनाओं पर अधिक जोर देते हैं। जो छात्र को जल्द से जल्द इस मशीनीकरण परिवेश का अंग बना दें। इस ज्ञान से छात्र चतुर ज्ञान प्राप्त करने तथा नौकरी पाने में सक्षम हो तो जाता है किंतु यहां बालक का एकांगी विकास होता है। जबकि हमारी शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है। जो ऐसे मनुष्यों का निर्माण करती है जिसमें आंतरिक बोध हो अपने व्यक्तित्व के आंतरिक अवस्था के अन्वेक्षण की ओर उसकी परीक्षा तथा उससे परे जाने की क्षमता हो। मानव जीवन में सफलता और शांति दोनों चाहता है। बालक को सर्वश्रेष्ठ टेक्नोलॉजिकल कार्यक्षमता से संपन्न करना इसलिए आवश्यक है ताकि वह आधुनिक विश्व में स्पष्टता से एवं कुशलता से कार्य कर सके। किंतु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण एक ऐसे वातावरण का निर्माण करना आवश्यक है जहां बालक एक पूर्ण मनुष्य के रूप में विकसित हो सके। उसे एक ऐसे वातावरण में पुष्पित होने का अवसर दिया जाए जिससे कि वह व्यक्तियों के साथ वस्तुओं एवं विचारों के साथ समस्त जीवन के साथ सही रूप से संबंधित हो सके। आज हम जिस समाज में रह रहे हैं वह इतना भयानक है कि उसके एक झलक मात्र से हमारी रूह कांप उठती है। इसलिए शिक्षित व्यक्ति इस समाज को बदलने के लिए सोचता है और कभी वह विद्रोह करता है हिंसात्मक मार्ग अपनाता है। एक शिक्षित व्यक्ति से परिवर्तन सोच की अपेक्षा तो की जा सकती है किंतु हिंसात्मक रूप से नहीं बल्कि अहिंसात्मक रूप से। यदि मनुष्य अपने चारों तरफ घटित होने वाली घटनाओं को देखकर सुनकर उस पर विचार करें। उसका निरीक्षण करें तो वह निश्चित रूप से ऐसे भिन्न मनुष्य के रूप में विकसित हो सकता है जो सतर्क है जिसमें स्नेह है और जो लोगों से प्रेम करता है। शिक्षित होने का अर्थ है आप वास्तव में एक सुंदर स्वस्थ समझदार

विवेकपूर्ण व्यक्ति बन सकें न कि एक चतुर दिमाग वाले बर्बर व्यक्ति जो अपनी बर्बरता के समर्थन में तर्क कर सकता है। समस्त शैक्षिक प्रक्रिया में शिक्षक तथा शैक्षिक परिवेश का महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए शिक्षक का व्यक्तित्व तथा शैक्षिक परिवेश दोनों भयमुक्त होना चाहिए। शिक्षक का सबसे पहले कर्तव्य यह है कि वह विद्यार्थी के अंदर भय किसी भी रूप में न पैदा करें क्योंकि किसी भी प्रकार का भय मन को पंगु बना देता है। शिक्षक का यह कार्य है कि वह छात्र को जीवन का समस्त विस्तार उसका सौंदर्य उसकी कुरूपता सुख आनंद भय कष्ट आदि दिखाए जिससे वह एक ऐसा गुरूतर मनुष्य बनें जो जीवन में अपनी बुध्दि का उपयोग कर सकें। शैक्षिक परिवेश को कृष्णमूर्ति ऐसा बनाना चाहते हैं जहां छात्र पुस्तकों से सीखने के साथ-साथ अवलोकन करना भी सीखे। पुस्तकें जो कह रही हैं वह सच है अथवा झूठ। इसीलिए वे विद्यालय को अवकाश का स्थल बनाते हैं। जहां शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों सीख रहे होते हैं। उनके पास अवलोकन करने के लिए अपरिमित समय है। अवकाश का अर्थ है एक शांत मन जहां कोई प्रयोजन नहीं है और इसीलिए कोई दिशा भी नहीं है। यही अवकाश वह अवस्था है जिससे मन सीख सकता है न केवल विज्ञान इतिहास गणित बल्कि स्वयं के बारे में भी। और व्यक्ति परस्पर संबंधों में भी स्वयं के बारे में ही सीखता है। अर्थात् एक विद्यालय का सही अर्थ यही है कि विद्यार्थी को अपनी प्रज्ञा जगाने में तथा संबंध के वृहद महत्व को सीखने में सहायता करना। एक शिक्षक के लिए यह अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि वह अपने परस्पर संबंधों में समग्र उत्तरदायित्व का अनुभव करें न केवल विद्यार्थी के प्रति बल्कि संपूर्ण मनुष्य जाति के प्रति। शिक्षक का यह उत्तरदायित्व है कि वह एक नयी पीढ़ी को जन्म दें जो जीवकोपार्जन की चिंता में पूर्णतः निमग्न और व्यस्त इस सामाजिक ढांचे को बदल डालें। तब शिक्षण एक परम पवित्र एवं धार्मिक कृत्य बन जाएगा। किंतु इसके लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि विद्यालयों में शिक्षक आर्थिक और मनोवैज्ञानिक रूप से स्वयं को सुरक्षित अनुभव करें। यदि शिक्षक अपनेआप में खुश नहीं है तो उसका ध्यान बंटा रहेगा और वह अपनी पूरी क्षमता का उपयोग करने में असमर्थ रहेगा। शिक्षक को समय-समय पर अवकाश भी प्रदान करना चाहिए जिससे कि वह एकाकी होकर शांत हो सके अपनी खोई ऊर्जा को पुनरू प्राप्त कर लें जिससे कि उसे अपनी व्यक्तिगत समस्याओं का बोध हो सके और वह शांतचित्त अवस्था में उसका समाधान ढूंढ निकालें पुनः विद्यार्थियों के समक्ष उत्साहपूर्वक शिक्षणकार्य कर सके। कृष्णमूर्ति आंतरिक अनुशासन पर बल देते हैं। बाह्य अनुशासन मन को मूर्ख बना देता है यह आप में अनुकूलता और नकल करने की प्रवृत्ति लाता है। परंतु यदि आप अवलोकन के द्वारा सुन करके दूसरों की सुविधाओं का ध्यान करके विचार के द्वारा अपने को अनुशासित करते हैं तो इससे व्यवस्था आती है। जहां व्यवस्था होती है वहां स्वतंत्रता सदैव रहती है। यदि आप ऐसा करने में स्वतंत्र नहीं है तो आप व्यवस्था नहीं कर सकते। व्यवस्था ही अनुशासन है। जे. कृष्णमूर्ति अपने शैक्षिक विचारों के माध्यम से शिक्षक और शिक्षार्थी को यह उत्तरदायित्व सौंपते हैं

4.7 दलाई लामा : विश्व शांति को लेकर मानवीय दृष्टिकोण

यह विडंबना ही है कि अधिक गंभीर समस्याएँ औद्योगिक रूप से अधिक विकसित समाजों से आती है। विज्ञान और तकनीक ने कई क्षेत्रों में चमत्कारिक कार्य किए हैं पर मनुष्य की मूलभूत समस्याएँ बनी हुई है। अभूतपूर्व साक्षरता है पर फिर भी लगता नहीं कि इस वैश्विक शिक्षा ने अच्छाई को बढ़ावा दिया हो अपितु इसके स्थान पर केवल मानसिक अशांति और असंतोष की ही बढ़त हुई है। हमारे भौतिक विकास और तकनीक में बढ़त को लेकर कोई संदेह नहीं पर फिर भी यह पर्याप्त नहीं है क्योंकि अभी तक हम शांति और सुख लाने में या पीड़ाओं पर काबू पाने में सफल नहीं हुए हैं। हम केवल निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि हमारे उन्नति तथा विकास में कोई गंभीर चूक हुई होगी और यदि हमने समय रहते उसे रोका नहीं तो मानवता के भविष्य के लिए उसके विनाशकारी परिणाम होंगे। मैं विज्ञान और तकनीक के विरोध में बिलकुल भी नहीं हूँ उन्होंने मानवता के समग्र अनुभव हमारे भौतिक सुख तथा कल्याण में और जिस विश्व में हम रह रहे हैं उसकी अधिक समझ में बहुत अधिक सहयोग दिया है। पर यदि हम विज्ञान और तकनीक पर बहुत अधिक बल दें तो हमारा मानवीय ज्ञान और समझ के उन अंगों से संपर्क टूटने का खतरा है जो ईमानदारी और परोपकार की ओर प्रेरित करते हैं। विज्ञान और तकनीक में यद्यपि अनगिनत भौतिक सुख उपलब्ध कराने की क्षमता है पर यह हमारे सदियों पुराने आध्यात्मिक तथा मानवीय मूल्यों का स्थान नहीं ले सकते जिन्होंने विश्व सभ्यता को उनके सभी राष्ट्रीय रूप में जैसा हम जानते हैं एक व्यापक आकार दिया है। कोई भी विज्ञान के अभूतपूर्व भौतिक लाभ को नकार नहीं सकता पर हमारी आधारभूत मानवीय समस्याएँ बनी हुई है। हम अभी भी उन्हीं का सामना कर रहे हैं यदि और अधिक नहीं तो दुख भय तथा तनाव। इसलिए यह तर्कोचित ही है कि एक ओर भौतिक विकास और दूसरी और आध्यात्मिक मानवीय मूल्यों के विकास के बीच संतुलन साधा जाए। इस समन्वय को लाने के लिए हमें अपने मानवीय मूल्यों को पुनर्जीवित करना होगा।

मेरा यह पक्का विश्वास है कि कई लोग आज के वैश्विक नैतिक संकट को लेकर मेरी चिंता से सहमति रखते हैं और सभी मानवतावादी और धर्म अभ्यासी भी जो हमारे समाज को अधिक करुणामय न्यायपूर्ण और एक समान बनाने को लेकर चिंतित हैं मेरे आग्रह से जुड़ेंगे। मैं एक बौद्ध या एक तिब्बती के रूप में नहीं बोल रहा नही मैं अंतरराष्ट्रीय राजनीति हालांकि मैं अपरिहार्य रूप से इन विषयों पर टिप्पणी देता मैं मात्र एक मनुष्य की तरह बोलता हूँ मानवीय मूल्यों के समर्थक के रूप में जो न केवल महायान बौद्ध धर्म की पर सभी विश्व के महान धर्मों की नींव है। इस दृष्टिकोण से मैं आपके साथ अपना व्यक्तिगत दृष्टिकोण बाँट रहा हूँ कि-

1. वैश्विक मानवतावाद वैश्विक समस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक है।
2. करुणा विश्व शांति का स्तंभ है।

3. इस दृष्टिकोण से विश्व के सभी धर्म शांति के पक्षधर हैं जैसे कि किसी भी आदर्श वाले मानवतावादी।
4. प्रत्येक व्यक्ति का सार्वभौमिक उत्तरदायित्व है कि वह मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु संस्थाओं को स्वरूप दें।

मानवीय व्यवहार को परिवर्तित करते हुए मानवीय समस्याओं का समाधान आज हम जिन कई समस्याओं का सामना कर रहे हैं उनमें से कुछ प्राकृतिक आपदाएँ हैं और उन्हें स्वीकारा जाना चाहिए और उनका सामना समभाव से करना चाहिए। पर अन्य कई हमारी गलत फहमियों के कारण हमारी अपनी बनाई हुई है और सुधारी जा सकती है। इस प्रकार जब हम लोग आधारभूत मानवता जो हमें आपस में एक बड़े परिवार की तरह जोड़कर रखती है को भूल कर छोटी-छोटी बातों के लिए झगड़ते हैं तो विचारधाराओं का संघर्ष फिर वह चाहे राजनीतिक हो या धार्मिक उत्पन्न होता है। हमें सदा स्मरण रखना चाहिए कि दुनिया के विविध धर्म विचारधाराएँ और राजनीतिक प्रणालियाँ मनुष्यों को सुख देने के लिए बनाई गई है। हमें इस मूलभूत लक्ष्य को नहीं भूलना और किसी भी स्थिति में लक्ष्य पर साधन को हावी नहीं होने देना चाहिए वस्तु और विचारधारा पर मानवता की श्रेष्ठता सदा बनाई रखनी चाहिए।

अब तक मानवता के समक्ष देखा जाए तो इस धरती के सभी सत्वों के समक्ष जो सबसे बड़ा खतरा है वह परमाणु विनाश का खतरा है। मुझे इस खतरे के बारे में अधिक विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है परन्तु मैं विश्व के समस्त परमाणु शक्तियों के नेताओं से अपील करना चाहूँगा जो वास्तव में अपने हाथों में विश्व का भविष्य धरे बैठे हैं उन वैज्ञानिकों और तकनीकी लोगों से जो विनाश के इन अभूतपूर्व अस्त्र शस्त्रों के निर्माण में लगे हुए हैं और कुल मिलाकर उन सभी लोगों से जो इन नेताओं को प्रभावित करने की स्थिति में हैं मैं उनसे अपील करता हूँ कि वे अपनी बुद्धि को काम में लाएँ तथा सभी परमाणु हथियारों को विखंडित और नष्ट करने का कार्य प्रारंभ करें। हम जानते हैं कि परमाणु युद्ध होने की स्थिति में कोई विजेता न होगा क्योंकि कोई जीवित न रहेगा। क्या ऐसे अमानवीय और हृदयहीन विनाश की सोच भी डरा देने वाली नहीं है और क्या यह तर्कसंगत नहीं कि हम अपने ही विनाश के कारण को दूर करें जब हम कारण जानते हैं और ऐसा करने हेतु हमारे पास यह करने के लिए समय और उपाय दोनों ही उपलब्ध हैं। प्रायः हम अपनी समस्या का समाधान नहीं कर पाते क्योंकि या तो हम इसका कारण नहीं जानते या फिर यदि हम समझते हैं तो हमारे पास उसके समाधान का उपाय नहीं होता। परमाणु खतरे के विषय में ऐसा नहीं है।

चाहे उनका संबंध विकसित प्रजाति से हो जैसे मनुष्य अथवा साधारण पशु सभी सत्व मूल रूप से शांति आराम तथा सुरक्षा चाहते हैं। जीवन मूक पशुओं के लिए उतना ही प्रिय है जितनी किसी मनुष्य के लिए एक छोटा कीड़ा भी अपने जीवन पर आए खतरे से अपने को बचाने का प्रयास करता है।

जिस प्रकार हममें से प्रत्येक जीना चाहता है और मरना नहीं चाहता यही बात ब्रह्मांड के सभी जीव-जंतुओं के साथ है यद्यपि उनकी इसे प्रभावित कर पाने की शक्ति एक अलग बात है।

व्यापक रूप से कहा जाए तो सुख तथा दुख दो तरह के होते हैं मानसिक और शारीरिक और इन दोनों में से मैं सोचता हूँ कि मानसिक दुख और सुख अधिक तीव्र होते हैं। इसलिए मैं दुख को झेलने और सुख के स्थायी भाव की स्थिति के लिए चित्त शोधन पर बल देता हूँ। पर सुख को लेकर मेरी एक और सामान्य और ठोस सोच भी है आंतरिक शांति आर्थिक विकास और सबसे ऊपर विश्व शांति का समन्वय। मुझे लगता है कि ऐसे लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वैश्विक उत्तरदायित्व की भावना आवश्यक है नस्ल, रंग, लिंग या राष्ट्रीयता से ऊपर उठी सभी के लिए एक गहरी चिंता का भाव। वैश्विक उत्तरदायित्व की इस सोच के आधार के पीछे एक सरल तथ्य यह है कि साधारण रूप से अन्य सभी लोगों की इच्छाएँ मेरी इच्छाओं की ही तरह हैं। प्रत्येक सत्व सुख चाहता है दुख नहीं। यदि हम बुद्धिमान मानव होने के नाते इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते तो इस ग्रह पर और अधिक दुख होंगे। यदि हम जीवन को लेकर आत्मकेंद्रित दृष्टिकोण अपनाएँ और अपने स्वार्थ साधने के लिए निरंतर दूसरों को काम में लाने का प्रयास करें तो हमें कुछ अस्थायी लाभ हो सकता है परन्तु दीर्घ काल में हम वैयक्तिक सुख तक प्राप्त नहीं कर सकेंगे फिर विश्व शांति का तो प्रश्न ही नहीं उठता। सुख की खोज में मनुष्य ने विभिन्न उपाय अपनाए हैं जो अधिकतर क्रूर और घृणास्पद रहे हैं। एक मनुष्य होते हुए उनका व्यवहार मानवोचित नहीं है और वे अपने स्वार्थ लाभ के लिए अपने साथियों और अन्य सत्वों को पीड़ा पहुँचाते हैं। अंत में उनके अदूरदर्शी कार्य स्वयं को साथ ही दूसरों को दुख पहुँचाते हैं। मानव रूप में जन्म लेना ही अपने-आप में असाधारण होता है और इस अवसर का प्रभावी और कौशलपूर्ण रूप से यथासंभव लाभ उठाने में ही समझदारी है। हमारे पास वैश्विक जीवन प्रक्रिया को लेकर एक सही दृष्टिकोण होना चाहिए ताकि दूसरों की कीमत पर एक व्यक्ति या एक समूह विशेष का सुख या प्रतिष्ठा प्राप्त करने का प्रयास न हो। इन सभी के लिए वैश्विक समस्या को लेकर एक नये दृष्टिकोण की आवश्यकता है। विश्व तीव्र गति से हो रहे प्रौद्योगिक विकास और अंतरराष्ट्रीय व्यवसाय साथ ही बढ़ते अंतरराष्ट्रीय संबंधों के कारण और छोटे से छोटा और अधिक से अधिक अन्योन्याश्रित होता जा रहा है। अब हम एक-दूसरे पर बहुत अधिक निर्भर हैं। आज हम इतने अधिक अन्योन्याश्रित हैं इतने अधिक आपस में जुड़े हुए हैं कि एक वैश्विक बंधु-भगिनी भाव और एक समझ और विश्वास कि हम एक बड़े मानवीय परिवार के सदस्य हैं के अभाव में हम अपने अस्तित्व के संकट से उबरने तक के बारे में नहीं सोच सकते शांति और सुख तो दूर की बात है।

यद्यपि राष्ट्रों के बीच बढ़ती अन्योन्याश्रितता से सहानुभूतिपूर्ण सहयोग के उत्पन्न होने की आशा की जा सकती है पर जब तक लोग दूसरों की भावनाओं और सुख के प्रति उदासीन रहेंगे तब तक एक सच्चे सहयोग की भावना की प्राप्ति नहीं हो सकती। जब लोग अधिकांश रूप से लालच और ईर्ष्या से प्रेरित हों तो उनके लिए सद्भाव से जीवन जीना संभव नहीं है। संभव है कि एक आध्यात्मिक

दृष्टिकोण सभी राजनैतिक समास्याओं का समाधान न कर पाए जो कि वर्तमान आत्मकेंद्रित सोच के कारण उत्पन्न हुई होए पर एक लम्बे समय में यह उन समस्याओं के समाधान का आधार बनेगा जिनका सामना आज हम कर रहे हैं।

दूसरी ओर यदि मानव जाति अपनी समस्याओं को केवल अस्थायी औचित्य के दृष्टिकोण मात्र से देखती रही तो भविष्य की पीढ़ियों को बहुत अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। विश्व की जनसंख्या बढ़ रही है और हमारे संसाधन तेजी से समाप्त होते जा रहे हैं। उदाहरण के लिए वृक्षों की ओर ही देख लीजिए। कोई नहीं जानता कि बड़े पैमाने पर वनों की कटाई के हमारी जलवायु मिट्टी और कुल मिलाकर वैश्विक पारिस्थितिकी पर क्या दुष्परिणाम होंगे। हम समस्याओं को अपने समक्ष पा रहे हैं क्योंकि लोग समूची मानव जाति के बारे में न सोचते हुए केवल अपने अल्पकालीन स्वार्थ को साधने में लगे हैं। वे पृथ्वी के बारे में नहीं सोच रहे और न ही इसके सार्वभौमिक जीवन पर प्रभाव के बारे में। यदि हमारी वर्तमान पीढ़ी इसके बारे में नहीं सोचती तो संभवतः भावी पीढ़ियाँ इससे निपट न पाएँ।

विश्व शांति के स्तंभ के रूप में करुणा

बौद्ध मनोविज्ञान के अनुसार हमारी अधिकांश कठिनाइयों का कारण हमारी भावुक कामना और वस्तुओं के प्रति आसक्ति है। जिसे हम भ्रांति से स्थायी वस्तुएँ मान बैठते हैं। अपनी इच्छाओं तथा मोह की वस्तुओं के पीछे भागने के लिए आक्रामकता और प्रतिस्पर्धा के उपयोग महत्त्वपूर्ण उपकरण माने जाते हैं। यह मानसिक प्रक्रिया सरलता से कार्य में परिवर्तित होती है और स्वाभाविक प्रभाव के तौर पर भावनाओं को जन्म देती है। महायान बौद्ध परंपरा में शिक्षित होने के कारण मैं मानता हूँ कि प्रेम और करुणा ही विश्व शांति का नैतिक ताना-बाना है। पहले मुझे स्पष्ट करने दें कि करुणा से मेरा क्या तात्पर्य है। जब किसी निर्धन व्यक्ति के लिए आप में दया या करुणा होती है तो आप इसलिए दया दिखाते हैं क्योंकि वह निर्धन है। आपकी करुणा परोपकार की प्रेरणा की भावना पर आधारित होती है। दूसरी ओर अपनी पत्नी अपने पति अपने बच्चे या अंतरंग मित्र के साथ प्रेम प्रायः आसक्ति पर आधारित होता है। जब आपकी आसक्ति परिवर्तित होती है तो आपकी दया भी परिवर्तित होती है। यह गायब भी हो सकती है। यह वास्तविक प्रेम नहीं है। वास्तविक प्रेम आसक्ति पर नहीं अपितु परोपकार पर आधारित होता है। इस स्थिति में जब तक सत्व दुखी रहेंगे तब तक आपकी करुणा दुख के प्रति एक मानवीय संवेदना के रूप में बनी रहेगी। हमें अपने अंदर इस प्रकार की करुणा को विकसित करने का प्रयास करना चाहिए और हमें इसे एक सीमित मात्रा से असीमित मात्रा तक विकसित करना चाहिए। स्वाभाविक है कि सभी सत्वों के प्रति भेदभावहीन सहज और असीमित करुणा साधारण प्रेम के समान नहीं है जो किसी का मित्रों अथवा परिजनों के प्रति होता है जो अज्ञान इच्छा और आसक्ति से मिश्रित होता है। करुणा के पीछे तर्क यह है कि हममें से हर एक दुख को टालना चाहता है और सुख प्राप्त करना चाहता है। यह मैं के एक उचित भावना पर आधारित है जो

सुख की सार्वभौमिक इच्छा का निर्धारण करता है। निश्चित रूप से सभी सत्व एक जैसी इच्छाओं के साथ जन्म लेते हैं और हर एक को उन्हें पूरा करने का समान अधिकार होना चाहिए। यदि मैं स्वयं की तुलना दूसरों के साथ करता हूँ जो अनगिनत हैं तो मैं अनुभव करता हूँ कि अन्य अधिक महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि मैं मात्र एक व्यक्ति हूँ जबकि अन्य तो बहुत सारे हैं। इसके अतिरिक्त तिब्बती बौद्ध परंपरा हमें सभी सत्वों को अपनी प्रिय माँ के रूप में देखने की और उन सभी से प्रेम कर कृतज्ञता व्यक्त करने की भी शिक्षा देती है। क्योंकि बौद्ध सिद्धांतानुसार हम अनगिनत बार जन्म और पुनर्जन्म लेते हैं और यह सोचना संभव है कि प्रत्येक सत्व किसी न किसी समय में हमारे अभिभावक रहे होंगे। इस प्रकार ब्रह्मांड के सभी सत्वों में पारिवारिक संबंध है।

कोई धर्म में विश्वास करता हो या नहीं पर ऐसा कोई नहीं जो करुणा और प्रेम को नहीं सराहता। हमारे जन्म के पल से हम अपने अभिभावकों की देखभाल और दया पर निर्भर रहते हैं बाद के जीवन में रोग और वृद्धावस्था का सामना करते हुए हम फिर दूसरों की दया पर निर्भर होते हैं। यदि हम अपने जीवन के प्रारंभ और अंत में दूसरों की दया पर निर्भर होते हैं तो फिर हम जीवन के मध्य काल में दूसरों के साथ दया का व्यवहार क्यों नहीं कर सकते? सहृदयता जिसमें सभी मनुष्यों के प्रति आत्मीयता का भाव हो के विकास में जिसे हम परंपरागत धार्मिक तौर-तरीकों से जोड़कर देखते हैं उस प्रकार की धार्मिकता की आवश्यकता नहीं होती। यह केवल उन लोगों के लिए नहीं है जिनका धर्म में विश्वास है अपितु यह जाति धर्म विशेष अथवा राजनीतिक विचारधारा से ऊपर उठकर हर एक के लिए है। यह हर उस व्यक्ति के लिए है जो स्वयं को सबसे पहले मानव परिवार का सदस्य मानता या मानती है और जो बातों को एक व्यापक और लंबी अवधि के दृष्टिकोण से देखता देखती है। यह एक शक्तिशाली भावना है जिसका हमें विकास और प्रयोग करना चाहिए जबकि हम प्रायः इसको अनदेखा कर देते हैं विशेषकर अपने जीवन के चरम समय में जब हम सुरक्षा का एक झूठा भाव अनुभव करते हैं।

जब हम दीर्घ अवधि के दृष्टिकोण को लेकर सोचते हैं तो यह तथ्य कि सभी सत्व सुख चाहते हैं और पीड़ा से बचना चाहते हैं और अनगिनत अन्य के संदर्भ में अपनी महत्त्वहीनताए तो हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि दूसरों के साथ अपनी वस्तुएँ बाँटना उपयुक्त है। जब आप इस तरह के दृष्टिकोण में प्रशिक्षित होते हैं तो करुणा की एक सच्ची भावना दूसरों के लिए प्रेम और सम्मान की एक सच्ची भावना संभव है। वैयक्तिक सुख का भाव अपने आप ही एक आत्मकेंद्रित प्रयास के रूप में समाप्त होकर यह दूसरों के प्रति प्रेम और सेवा प्रक्रिया का स्वतः और बेहतर उत्पाद हो जाता है।

आध्यात्मिक विकास का एक और परिणाम दिन प्रतिदिन के जीवन में सबसे लाभकारी यह होता है कि यह चित्त की शांति और प्रत्युत्पन्नमति देता है। हमारे जीवन निरंतर परिवर्तनशील हैं और अपने साथ कई कठिनाइयाँ लाते हैं। एक शांत और स्पष्ट चित्त से सामना करने पर समस्याओं का समाधान सफलतापूर्वक होता है।

इसके विपरीत जब हम घृणा, स्वार्थ, ईर्ष्या और क्रोध के कारण चित्त पर नियंत्रण खो देते हैं तो हम अपनी निर्णय क्षमता भी खो बैठते हैं। हमारे चित्त अंधे हो जाते हैं और उन मति भ्रष्ट क्षणों में कुछ भी हो सकता है युद्ध तक। इसलिए करुणा और प्रज्ञा का प्रयोग सभी के लिए उपयोगी होता है विशेषकर उन लोगों के लिए जो राष्ट्रीय मामलों को चलाने के उत्तरदायी हैं जिनके हाथों में विश्व शांति का ढांचा तैयार करने की शक्ति और अवसर है।

विश्व शांति के लिए विश्व के धर्म

अभी तक जिन सिद्धांतों की चर्चा हुई है वह विश्व भर के सभी धर्मों की नैतिक शिक्षा के अनुसार है। मैं यह विश्वास रखता हूँ कि विश्व के सभी प्रमुख धर्म-बौद्ध, ईसाई, कन्फूशिवाद, हिंदू, इस्लाम, जैन, यहूदी, सिक्ख, ताओवाद, पारसीके प्रेम को लेकर आदर्श एक से हैं आध्यात्मिक अभ्यास से मानवता का भला करने का समान लक्ष्य और धर्म का पालन करने वालों को एक अच्छा मानव बनाने का प्रभाव भी एक सा ही है। सभी धर्म चित्त काय और वाक को परिष्कृत करने के लिए नैतिक सिद्धांतों की शिक्षा देते हैं। सभी हमें झूठ न बोलने चोरी न करने की या दूसरों के प्राण न लेने आदि की शिक्षा देते हैं। मानवता के महान शिक्षकों द्वारा दिए गए सभी नैतिक उपदेशों का एक समान लक्ष्य है निस्वार्थ भाव। महान शिक्षक अपने अनुयायियों को अज्ञान के कारण नकारात्मक कार्यों के मार्ग पर चलने से रोककर उन्हें अच्छाई के मार्ग से परिचय करना चाहते थे।सभी धर्म स्वार्थ और अन्य बुराइयों की जड़ अनुशासनहीन चित्त पर नियंत्रण की आवश्यकता को लेकर सहमत हैं और प्रत्येक एक मार्ग की शिक्षा देता है जो ऐसे आध्यात्मिक अवस्था की ओर ले जाता है जो शांतिपूर्ण अनुशासित नैतिक और प्रज्ञावान होता है। इस अर्थ में मेरा मानना है कि सभी धर्मों का मूलत: एक ही संदेश है। रुढ़ियों में अंतर का कारण समय परिस्थिति और साथ ही सांस्कृतिक प्रभाव हो सकते हैं। वास्तव में जब हम धर्म के गूढ़ पक्ष की चर्चा करते हैं तो बौद्धिक चर्चा का कोई अंत नहीं है। पर अपने नित्य प्रति के जीवन में व्यावहारिकता को लेकर छोटे-छोटे अंतरों पर तर्क करने के स्थान पर सभी धर्मों की अच्छी शिक्षाओं के साझा विचार को अपनाना कहीं अधिक लाभकारी है।

कई विभिन्न धर्म हैं जो मानवता को आराम और सुख देते हैं ठीक उसी तरह जैसे विभिन्न रोगों के लिए विशिष्ट उपचार उपलब्ध हैं। क्योंकि सभी धर्म अपने ढंग से सत्वों को दुख को दूर कर सुख प्राप्त करना सिखाते हैं। और यद्यपि हम धार्मिक सच्चाइयों की विशिष्ट विवेचना को अपनाने के लिए कारण खोज सकते हैं परन्तु एकता के और बड़े कारण हैं जो मानवीय हृदय से उत्पन्न होते हैं। एक बड़ा कारण है। प्रत्येक धर्म अपने ढंग से मनुष्य की कठिनाइयों को कम करने का प्रयास करता है और विश्व सभ्यता में योगदान देता है। धर्म परिवर्तन प्रश्न नहीं है। उदाहरण के लिए मैं अन्य लोगों को बौद्ध धर्म में परिवर्तित करने या केवल बौद्ध चिंतन को ही आगे बढ़ाने को नहीं मानता। अपितु मैं यह सोचने का प्रयास करता हूँ कि एक बौद्ध मानवतावादी के नाते मैं किस प्रकार मानवीय खुशी में योगदान दे सकता हूँ।

दुनिया के धर्मों के बीच आधारभूत समानता की ओर ध्यान दिलाते हुए मैं अन्य सभी धर्मों की तुलना में किसी एक धर्म को अच्छा बताने का पक्ष नहीं लेता और न ही मैं किसी नये विश्व धर्म की खोज करता हूँ। मानवीय अनुभव और विश्व सभ्यता को समृद्ध बनाने के लिए विश्व के सभी विभिन्न धर्मों की आवश्यकता है। हमारे मानवीय मस्तिष्क की विभिन्न क्षमताओं और स्वभाव के कारण शांति और सुख प्राप्त करने के लिए अलग उपायों की आवश्यकता होती है। यह भोजन की तरह है। कुछ लोगों को ईसाई धर्म ज्यादा आकर्षित करता है तो अन्य कईयों को बौद्ध क्योंकि इसमें कोई सृजनकर्ता नहीं है और सब कुछ आपके अपने कर्मों पर निर्भर करता है। हम इसी तरह से दूसरे धर्मों के पक्ष में भी तर्क दे सकते हैं। इसलिए यह बात तो स्पष्ट है मानवता को जीवन शैलियों से तालमेल बिठाने के लिएए विभिन्न आध्यात्मिक आवश्यकताओं के लिए और विरासत में मिली हर एक व्यक्ति की राष्ट्रीय परम्परा के लिए विश्व के सभी धर्मों की आवश्यकता है।

इसी दृष्टिकोण से मैं विश्व के विभिन्न भागों में धर्मों के बीच किए जा रहे बेहतर तरीके से समझने के प्रयासों का स्वागत करता हूँ। आज तो विशिष्ट रूप से इसकी तुरन्त आवश्यकता है। यदि सभी धर्म मानवीयता को और अच्छा करने को अपना मुख्य चिंतन बना लें तो वे विश्व शांति के लिए सरलता और सद्भाव से कार्य कर सकते हैं। अंतर्धर्मीय समझ सभी धर्मों को एक साथ कार्य करने की आवश्यक एकता लाएगी। परन्तु यद्यपि यह एक महत्त्वपूर्ण कदम है पर हमें याद रखना चाहिए कि इसका कोई तत्कालीन और सरल समाधान नहीं है। विभिन्न धर्मों के बीच जो सैद्धांतिक मतभेद हैं हम उन्हें अनदेखा नहीं कर सकते और न ही हम वर्तमान धर्मों के स्थान पर किसी नये सार्वभौमिक विश्वास को ही रख सकते हैं। प्रत्येक धर्म का अपना कुछ विशिष्ट योगदान होता है और प्रत्येक अपने ढंग से किसी विशिष्ट समुदाय के लोगों के लिए जैसा वे जीवन को समझते हैं उपयुक्त है। विश्व को सभी धर्मों की जरूरत है। हमें विभिन्न धर्मों के बीच बेहतर समझ को विकसित करना होगा ताकि सभी धर्मों के बीच कार्य करने के अनुकूल एकता स्थापित की जा सके। यह एक-दूसरे के मतों का सम्मान करते हुए और मानवता के कल्याण की हमारी समान सोच पर बल देकर कुछ अशों में प्राप्त की जा सकती है। हमें मूलभूत आध्यात्मिक मूल्यों पर एक ऐसी व्यावहारिक आम सहमति बनानी होगी जो हर एक मनुष्य के हृदय को स्पर्श करे और साधारण मानवीय सुख को बढ़ावा दे। हम विभिन्न धर्म के अभ्यासी मिलकर विश्व शांति के लिए काम कर सकते हैं जब हम विभिन्न धर्मों को सहृदयता के विकास दूसरों के प्रति प्यार और सम्मान समुदाय का एक सच्चा भाव के आवश्यक उपकरणों के रूप में देखते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है धर्म के उद्देश्य की ओर देखना न कि उसके धर्मशास्त्र और तत्व मीमांसा के विस्तृत रूप की ओर जो कोरी बौद्धिकता की ओर ले जाता है। मेरा मानना है कि विश्व के सभी प्रमुख धर्म विश्व शांति में योगदान दे सकते हैं और मानवता के कल्याण के लिए मिलजुलकर कार्य कर सकते हैं यदि हम सूक्ष्म आध्यात्मिक विभिन्नताओं को परे रख दें जो कि वास्तव में प्रत्येक धर्म का आंतरिक मामला है।

वैश्विक स्तर पर हुई आधुनिकता के कारण आई प्रगतिशील धर्मनिरपेक्षता और विश्व के कुछ भागों में आध्यात्मिक मूल्यों को नष्ट करने की सभी व्यवस्थित प्रयासों के बावजूद मानव जाति का एक बड़ा भाग किसी न किसी धर्म को मानता ही है। धर्म में अटूट विश्वास जो अधार्मिक राजनीतिक प्रणाली में भी स्पष्ट है स्पष्ट रूप से धर्म की शक्ति को प्रदर्शित करता है। इस आध्यात्मिक ऊर्जा और शक्ति का उद्देश्यपूर्ण उपयोग विश्व शांति के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ लाने में हो सकता है। इस संबंध में विश्व के सभी धर्मगुरु और मानवतावादियों की विशिष्ट भूमिका है। हम विश्व शांति को प्राप्त कर पाएँगे अथवा नहीं पर हमारे पास उस दिशा में काम करते रहने के अलावा कोई और विकल्प नहीं है। यदि हमारे चित्त पर क्रोध हावी रहा है तो हम मानव बुद्धि का सबसे अच्छा अंग प्रज्ञा उचित और अनुचित के बीच अंतर करने की क्षमता खो देंगे। क्रोध आज की दुनिया के सामने उपस्थित सबसे गंभीर समस्या है।

4.8 शांति शिक्षा के संदर्भ में पाउलो फ्रेरे के विचार

पाउलो फ्रेइरे (सितम्बर 19,1921 2 मई ,1997) ब्राजील के शिक्षाविद् तथा दार्शनिक थे। वे क्रिटिकल शिक्षण के पक्षधर थे। उनकी कृति 'दलितों का शिक्षण' बहुत प्रसिद्ध रही और क्रिटिकल शिक्षण आन्दोलन की आधारभूत पुस्तक है। शिक्षा के कुछ अन्य उद्देश्य भी हैं जैसे अनुशासन सीखना, नैतिक मूल्य समझना, चरित्रवान व परिपक्व व्यक्तित्व बनाना आदि लेकिन इन सब उद्देश्यों को आज शायद कम महत्वपूर्ण माना जाता है। ब्राज़ील के शिक्षाविद् पाउलो फ्रेइरे ने शिक्षा को पिछड़े व शोषित जन द्वारा सामाजिक विषमताओं से लड़ने तथा स्वतंत्रता प्राप्त करने के माध्यम की दृष्टि से देखा।

पाउलो फ्रेइरे की क्राँतीकारी शिक्षा

फ्रेइरे ब्राज़ील में 1950-60 के दशक में पिछड़े वर्ग के गरीब अनपढ़ वयस्क को पढ़ना लिखना सिखाने के ब्राज़ील के राष्ट्रीय कार्यक्रम में काम करते थे। ब्राज़ील में तानाशाही सरकार आने से उनके काम को उस सरकार ने अपने अपने विरुद्ध एक खतरे की तरह देखा और उन्हें देशनिकाला घोषित कर दिया इस वजह से फ्रेइरे ने 1960-70 के दशक में बहुत वर्ष ब्राज़ील के बाहर स्विटज़रलैंड में जेनेवा शहर में बिताये उन्होंने वयस्क शिक्षा के अपने अनुभवों पर कई पुस्तकें लिखीं जिन्होंने दुनिया भर के शिक्षा विषेशज्ञों को प्रभावित किया फ्रेइरे का कहना था कि अपनी शिक्षा में वयस्कों को सक्रिय हिस्सा लेना चाहिये और शिक्षा उनके परिवेश में उनकी समस्याओं से पूरी तरह जुड़ी होनी चाहिये उनका विचार था कि वयस्क शिक्षा का उद्देश्य लिखना पढ़ना सीखने के साथ साथ समाज का आलोचनात्मक संज्ञाकरण है जिसमें गरीब व शोषित व्यक्तियों को अपने समाज, परिवेशप ,रिस्थितियों और उनके कारणों को समझने की शक्ति मिले ताकि वे अपने पिछड़ेपन और गरीबी के कारण समझे और उन कारणों से लड़ने के लिए सशक्त हों, इसके लिए उन्होंने कहा कि किसी भी समुदाय में पढ़ाने से पहले शिक्षक को पहले वहाँ अनुशोध करना चाहिये और समझना

चाहिये कि वहाँ के लोग किन शब्दों का प्रयोग करते हैं उनकी क्या चिंताएं हैं, वे क्या सोचते हैं आदि फ़िर शिक्षक को कोशिश करनी चाहिये कि उसकी शिक्षा उन्हीं शब्दों चिताँओं आदि से जुड़ी हुई हो फ्रेइरे की शिक्षा पद्धति को सरल रूप में समझने के लिए हम एक उदाहरण देख सकते हैं। वर्णमाला का क, ख, ग, पढ़ाते समय स से सेब नहीं बल्कि सरकार या साहूकार या समाज भी हो सकता है। इस तरह से स से बने शब्द को समझाने के लिए शिक्षक इस विषय से जुड़ी विभिन्न बातों पर वार्तालाप व बहस प्रारम्भ करता है जिसमें पढ़ने वालों को वर्णमाला सीखने के साथ-साथ अपनी सामाजिक परिस्थिति को समझने में भी मदद मिलती है। सरकार कैसे बनती है कौन चुनाव में खड़ा होता है क्यों हम वोट देते हैं सरकार किस तरह से काम करती है क्यों गरीब लोगों के लिए सरकार काम नहीं करती इत्यादि या फ़िर क्यों साहूकार के पास जाना पड़ता है किस तरह की ज़रूरते हैं हमारे जीवन में किस तरह के ऋण की सुविधा होनी चाहिये इत्यादि इस तरह वर्णमाला का हर वर्ण पढ़ने वालों के लिए नये शब्द सीखने के साथ साथए लिखना पढ़ना सीखने के साथ-साथ उनको अपनी परिस्थिति समझने का अवसर बन जाता है। फ्रेइरे मानते थे कि वयस्क गरीबों का पढ़ना लिखना व्यक्तिगत कार्य नहीं सामुदायिक कार्य है जिससे वह जल्दी सीखते हैं और साथ-साथ उनकी आलोचनक संज्ञा का विकास होता है ताकि वे अपने अधिकारों के लिए लड़ सकें फ्रेइरे के विचारों को दुनिया में बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है केवल वयस्कों की शिक्षा पर नहीं बल्कि अन्य बहुत सी दिशाओं में भी मैं इस सिलसिले में ब्राज़ील से सम्बंधित तीन छोटे छोटे अनुभवों के बारे में कहना चाहुँगा जहाँ उनके कुछ विचारों को प्रतिदिन अभ्यास में लाया जाता है पाउले फ्रेइरे के विचारों का दुनिया भर में ग्रामीण विकास शिक्षा मानव अधिकारों के लिए लड़ाईयाँ जैसे अनेक क्षेत्रों में बहुत गहरा असर पड़ा है उनके विचार केवल तर्कों पर नहीं बने थे उनका आधार रोज़मर्रा के जीवन के ठोस अनुभव थे।

4.9 शांति शिक्षा के प्रसार में विद्यालय एवं शिक्षक की भूमिका

4.9.1एनसीईआरटी के पाठ्यक्रम में शांति शिक्षा

राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) ने शांति शिक्षा को स्कूली पाठ्यक्रम का महत्वपूर्ण अंग बताते हुए इसमें समानता सामाजिक न्याय मानवाधिकार सहिष्णुता सांस्कृतिक विविधता जैसे विषयों को शमिल करने की सिफारिश की है। पूरी विद्यालयी पाठ्यचर्या में शांति का परिदृश्य अंतर्निहित हो, ऐसा सोचने-विचारने का समय अब आगया है। शांति के लिए शिक्षा कई मायनों में शांति-शिक्षा से अलग है। शांति-शिक्षा से भिन्न शांति के लिए शिक्षा शांति की संस्कृति को बढ़ावा देने के लक्ष्य को शिक्षा के उद्यम को आकार देने के उद्देश्य के रूप में मानती है। यदि स्पष्ट दृष्टि और लगन के साथ शांति के लिए शिक्षा को लागू किया जाए, तो वह सीखने की प्रक्रिया को अत्यधिक आनंददायक और सार्थक बना सकती है। शांति और शांति के लिए शिक्षा भी अब परिभाषित हो चले हैं और विद्यालयी पाठ्यचर्या में शांति के लिए शिक्षा को संक्षेप में ही सही

शामिल किए जाने की आवश्यकता को वैश्विक और राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में रख कर देखा गया है। शांति के लिए शिक्षा पाठ्यचर्या के बोझ में कमी की मांग करती है। इस आधार पत्र में शांति सभी मूल्यों की आपसी एकात्मता को प्रासंगिक तथा शिक्षाशास्त्रीय दृष्टि से लाभदायक बिंदु प्रदान करती है। इस आधर पत्र में शांति और न्याय की पारस्परिकता को भी रेखांकित किया गया है। यह बात अंततः शांति के पक्ष में होगी और ऐसा न होने की परिस्थिति में इसका भय रहेगा कि कहीं शांति एक दमनकारी और प्रतिगामी विचारधरा न बन जाए।शांति के बीज के रूप में आंतरिक शांति की पहचान की गई है, साथ ही सावधन किया गया है कि आंतरिक शांति को पलायनवाद और पाखंडपूर्ण स्वार्थ समझने की ग़लती न करें। यह आधार पत्र विद्यालयी जीवन में खतरनाक तरीके से बढ़ रही हिंसा को लेकर चिंता व्यक्त करता है और इस के लिए शांति के शिक्षाशास्त्र की रूपरेखा देता है। शांति के लिए शिक्षा के अंतर्गत सीखने की प्रक्रिया में अध्यापक की निर्णायक भूमिका का और विद्यालयों को शांति की पौधशाला बना देने की आवश्यकता का भी परीक्षण करता है। इसके बाद यह आधार पत्र कुछ विस्तार के साथ भारतीय संदर्भ में शांति के लिए शिक्षा के मुख्य कार्य क्षेत्रों की जाँच करता है। यह काम शिक्षा के दो प्रधान लक्ष्यों के संदर्भ में किया गया है। वे हैं व्यक्तित्व-निर्माण और नागरिक का निर्माण। सभी भारतीयों की धर्म में न सही पर नागरिकता में तो सामान्य रूप से साझेदारी है। शांति के लिए शिक्षा के मुख्य कार्यक्षेत्र हैं : शांति शिक्षा के द्वारा व्यक्तियों में शांति के प्रति झुकाव पैदा करना विद्यार्थियों के भीतर उन सामाजिक कौशलों और अभिरुचियों का पोषण, जो दूसरों के साथ सामंजस्यपूर्वक जीने के लिए जरूरी है संविधन में सुविचारित सामाजिक न्याय की अवधारणा पर बल देना धर्मनिरपेक्ष संस्कति को प्रचारित करने की जरूरत है और लोकतांत्रिक संस्कृति को प्रेरित करने वाले उत्प्रेरक के रूप में शिक्षा, शिक्षा के द्वारा राष्ट्रीय अखंडता को बढ़ावा देने के प्रयास और जीवनशैली संबंधी एक आंदोलन के रूप में शांति के लिए शिक्षा।

विद्यालयी व्यवस्था शिक्षा आयोग (1964-66) ने अपनी रिपोर्ट में विद्यार्थियों में मूल्यों को रोपित करने के लिए विद्यालयों के वातावरण के महत्व पर जोर दिया था। स्कूल का वातावरण, शिक्षकों का व्यक्तित्व और व्यवहार विद्यालय में उपलब्ध कराई जाने वाली सुविधाएं विद्यार्थियों में मूल्यों का विकास के संदर्भ में बहुत महत्व रखते हैं। विद्यालय के माहौल को शांतिपूर्ण और न्यायपूर्ण समाज का सूक्ष्म जगत होना चाहिए और यही शांति के लिए शिक्षा का मूल उद्देश्य भी है। स्कूल व्यवस्था द्वारा पाठ्यचर्या के संदेशों को पुनर्बलित किया जा सकता है और वैधता प्रदान की जा सकती है। इस संबंध में कुछ महत्वपूर्ण मसले हैं कैसे बच्चों के अधिकारों और जरूरतों को विद्यालय में दबाया जाता है, विद्यालयी जीवन में शांति मूल्यों को प्रतिबिंबित किए जाने की जरूरत है।

शांति के लिए शिक्षा हेतु गतिविधियाँ - शांति के लिए शिक्षा को विद्यालय के सह-पाठ्यक्रम के जरिए भी व्यवस्थित किया जा सकता है। शांति विषय को साकार करने वाली कई गतिविधियां और परियोजनाएं विद्यालय में आयोजित की जा सकती हैं। वाद-विवाद, संगोष्ठी और दृश्य-श्रव्य

आयोजन में शांति को शामिल कर छात्रों को शांति निर्माण का कौशल विकसित करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। भूमिका निभाने, नाटकों, शांति कविताओं के सृजन, शांति गीत इत्यादि में बच्चों की भागीदारी। अंतरराष्ट्रीको य दिवसों जैसे मानवाधिकार दिवस, बाल दिवस, संयुक्त राष्ट्र दिवस, विकलांग दिवस, पर्यावरण दिवस इत्यादि में भागीदारी। दूसरों के प्रति संवेदनशीलता विकसित करना। बच्चों को वृद्धाश्रमों, अन्य पीड़ित संगठनों के दौरे के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है जिससे उनमें उनके कल्याण की भावना का विकास हो सके। चूंकि शांति विभिन्न संदर्भों में स्थान पाती है। ये सभी शांति के संदेश को फैलाने वाले हैं। विद्यालय के बाद के कार्यक्रमों में कई गतिविधियों को शामिल किया जा सकता है जो शांति के संदेश से जुड़ी हुई हैं। एक आदर्श शिक्षक विद्यार्थियों के जीवन को सर्वाधिक प्रभावित और प्रेरित करता है।

4.10 सारांश

शिक्षा पर गाँधी के सब विचार मुख्य तौर से नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित थे।सार्वभौमिक भाईचारे और शांति और सहअस्तित्व के बारे में गाँधी जी का बल आज भी पूरी तरह प्रासंगिक है। इसलिए उनकी शिक्षाएं आज भी देशभक्ति के सिद्धांत के साथ-साथ विभिन्न वैश्विक विवादों को हल करने या समाप्त करने के मार्ग और माध्यम सुझाती हैं। यह स्पष्ट है कि आज की दुनिया में शांति के संकट के सिवाए कुछ भी स्थाई नजर नहीं आता है तथा शांति के इस मसीहा को इससे बेहतर श्रद्धांजलि और कुछ नहीं होगी कि शांति और आपसी सहनशीलता के हित में काम किया जाए। यही गाँधीवाद की प्रासंगिकता है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर और भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी दोनों वैश्विक शांति का समर्थन करते थे।अरविन्द का शिक्षा दर्शन हमें सही दिशा का निर्देश करता है। ब्राज़ील के शिक्षाविद् पाउलो फ्रेइरे ने शिक्षा को पिछड़े व शोषित जन द्वारा सामाजिक विषमताओं से लड़ने तथा स्वतंत्रता प्राप्त करने के माध्यम की दृष्टि से देखा।

अपनी प्रगति की जाँच कीजिये –

1. शांति शिक्षा के संदर्भ में महात्मा गाँधी के विचारों को लिखिए।
2. शांति शिक्षा के संदर्भ मेंटैगोर के विचारों को लिखिए।
3. शिक्षा के संदर्भ में महर्षि अरविन्द के विचारों को लिखिए।
4. शांति शिक्षा के संदर्भ में जे. कृष्णमूर्ति के विचारों को लिखिए।
5. शांति शिक्षा के संदर्भ में दलाई लामा विचारों को लिखिए।
6. शांति शिक्षा के संदर्भ में पाउलो फ्रेरे के विचारों को लिखिए।
7. शांति शिक्षा के प्रसार में विद्यालय एवं शिक्षक की क्या भूमिका है?

सन्दर्भ-

1. https://www.unicef.org/education/files/PeaceEducation.
2. https://en.wikipedia.org/wiki/Peace_education

3. http://epathshala.nic.in/wp-content/doc/NCF/Pdf/education_for_peace.

4. Consortium on Peace Research, Education and Development, 1986.'Report on theJuniata Process'. COPRED Peace Chronicle, December1986.

5. Cremin, P., 1993. 'Promoting education for peace.' In Cremin, P., ed., 1993,Educationfor Peace. Educational Studies Association of Ireland and the IrishPeace Institute.Debus, Mary, 1988.

6. Hicks, D., 1985. Education for peace: issues, dilemmas and alternatives. Lancaster: St.Martin's College.

7. Fateem, Elham, 1993. 'Concepts of peace and violence: focus group discussions on asample of children, parents, teachers and front-line workers with children'. Cairo: TheNational Center for Children's Culture (Ministry of Culture) and UNICEF.

8. Fountain, S., 1998. 'Peace education/conflict resolution evaluation methods.' New York,UNICEF (unpublished paper, available from the author).

9. Cremin, P., ed., 199.,Education for Peace. Educational Studies Association ofIrelandand the Irish Peace Institute.

10. Regan, C., 1993. 'Peace education: a global imperative'. UNICEF, 1994.

11. World Health Organization, 1998. 'Violence prevention: an important element of ahealth-promoting school' (WHO Information Series on School Health, Document Geneva, WHO

12.प्रसाद, डी. एन, 'शांति शिक्षा की दार्शनिकता' (लेख)

13.कुमार, डा. रविन्द्र & डंगवाल, डा. किरनलता, 'मूल्य अवं शांति शिक्षा' आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन्स,

निवेदन

विगत कुछ वर्षों से सेवारत शिक्षकों के लिए अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम उथल पुथल के दौर से गुजरा है। इस संदर्भ में नयी पाठ्यचर्या को लागू करना और उसके अनुसार समय की सीमा के अन्तर्गत अध्येताओं को सामग्री उपलब्ध करवाना एक चुनौती भरा कार्य था। इस चुनौती को जिन लेखकों और संकलनकर्ताओं की मदद से सुगम किया गया, वे सब बधाई के पात्र हैं। प्रत्येक अध्ययन सामग्री में जिन मूल पुस्तकों का सहयोग लिया गया है, उनका यथासंभव संदर्भ ग्रन्थों के रूप में उल्लेख किया गया है। लेखक और संकलनकर्ता मूल ग्रन्थों के लेखकों के उद्यम और बौद्धिक सक्रियता का सम्मान करते हैं और इनके प्रति आभार ज्ञापित करते हैं। यदि यह ज्ञात होता है कि किसी मूल ग्रन्थ का नामोल्लेख रह गया है तो उसे भी हम साभार सम्मिलित करेंगे। पाठकों से अनुरोध है कि वे अपना फीडबैक उपलब्ध कराते रहे जिससे इस सामग्री को उत्तरोत्तर गुणवत्ता संपन्न किया जा सके।